www.thearyasamaj.org

VISHVA–JYOTI R. N. NO. 1/57 ISSN 0505-7523
REGD. NO. PB-HSP-01
CURRENCY PERIOD: (1.1.2012 TO 31.12.2014)

६२, १० जनवरी–2014

विश्वज्योति

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान

साधु आश्रम, होश्यारपुर

एक प्रति का मूल्य : १० रुपये

www.thearyasamaj.org

संस्थापक–सम्पादक :

स्व. पद्मभूषण आचार्य (डॉ.) विश्वबन्धु

सम्पादक:

प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल
(सञ्चालक)

आदरी सह-सम्पादक :

प्रो. त्रिलोचनसिंह बिन्द्रा

उप–सम्पादक :

डॉ. देवराज शर्मा

परामर्शक–मण्डल :

डॉ. दर्शनसिंह निर्वैर
होश्यारपुर

डॉ. (श्रीमती) कमल आनन्द
चण्डीगढ़

डॉ. जगदीशप्रसाद सेमवाल
होश्यारपुर

डॉ. (सुश्री) रेणू कपिला
पटियाला

शुल्क की दरें

आजीवन (भारत में)	:	१२०० रु.	आजीवन (विदेश में)	:	३०० डालर
वार्षिक (भारत में)	:	१०० रु.	वार्षिक (विदेश में)	:	३० डालर
सामान्य अङ्क (भारत में)	:	१० रु.	सामान्य अङ्क (विदेश में)	:	३ डालर
विशेषाङ्क (एक भाग भारत में)	:	२५ रु.	विशेषाङ्क (एक भाग विदेश में)	:	६ डालर

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम,
होश्यारपुर–146 021 (पंजाब, भारत)

दूरभाष : कार्यालय : 01882-223581, 223582, 223606
सञ्चालक (निवास) : 01882-224750, प्रैस : 231353

E-mail : vvr_institute@yahoo.co.in
Website : www.vvrinstitute.com

www.thearyasamaj.org

विषय-सूची

लेखक	विषय	विधा	पृष्ठांक
श्री देवनारायण भारद्वाज	ओम् अनमोल	मन्त्रगीत	2
डॉ. किशनाराम विश्नोई	बौद्धदर्शन और वेदांत में अन्तर्निहित समरूपता	लेख	3
डॉ. भवानीलाल भारतीय	शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय की औपन्यासिक त्रयीः चरित्रहीन	लेख	13
डॉ. सुधांशुमोहन अग्निहोत्री	होगा नया विहान	कहानी	15
डॉ. विद्यानन्द ब्रह्मचारी	विश्व-धर्म-सम्मेलन और युवा संन्यासी-स्वामी विवेकानन्द	लेख	18
डॉ. हनुमान प्रसाद उत्तम	हर ऋतु में उपयोगी हरड़	लेख	22
डॉ. दीप लता	वेद में सर्प-विष-चिकित्सा	लेख	24
डॉ. देवी सिंह	सन्त कबीरदास की रचनाओं में पथ्य-अपथ्य	लेख	28
डॉ. त्रिलोचन सिंह बिन्द्रा	संस्कृत-साहित्य में सद्वृत्त	लेख	34
सुश्री अनीता गोयल	इन्दुबाली के कथा-साहित्य का मूल्यांकन	लेख	38
श्री मनीष कौशल	श्रीमद्भागवतपुराण में धर्म	लेख	41
	संस्थान-समाचार		45
	विविध-समाचार		46

www.thearyasamaj.org

विश्वज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात् ॥ (ऋ. १,११३,१)

वर्ष ६२ होश्यारपुर, पौष २०७०; जनवरी २०१४ संख्या १०

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वा ऽतितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु।
शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः॥

(यजु. ३६, २)

मेरी (चक्षुषः) आंख का, मेरे हृदय का और मेरे (मनसः) मन का जो (छिद्रं) अतिछेदन हुआ हो बृहस्पति देव (तद्दधातु) उसे भर दे। (बृहस्पतिदेव) जो (सब) (भुवनस्य पतिः) संसार का मालिक और पालक हैं (वही) (नः) हमारे लिए (भी) (शं भवतु) कल्याणकारी हो।

(वेदसार-विश्वबन्धुः)

www.thearyasamaj.org

मन्त्रगीत –

ओम् अनमोल

–श्री देवनारायण भारद्वाज

मत माँग जमाना डोल डोल।
सच्चिदानन्द ओम् अनमोल॥

सौ सहस्र या लाख रुपैया।
पशु वाहन प्रासाद मड़ैया।
जो प्रभु ने तुझे प्रदान किये,
मत इनसे प्रभु तोल मगैया।

मत माँग लुभाना बोल बोल।
सच्चिदानन्द ओम् अनमोल॥

तूने रत्न सम्पदा जोरी।
भरि भरि गठरी भरि भरि बोरी।
प्रभु प्रेम-ऐश्वर्य के आगे,
तेरी छोटी पड़ी तिजोरी।

मत माँग खजाना खोल खोल।
सच्चिदानन्द ओम् अनमोल॥

खाओ मेवा मिश्री काजू।
इनसे करो सुदृढ़ निज बाजू।
सूक्ष्म ईश का भार सँभाले,
ऐसा कोई नहीं तराजू॥

मत माँग तराना तोल तोल।
सच्चिदानन्द ओम् अनमोल॥

**स्रोत– महे चन त्वामद्रिवः परा शुल्काय देयाम्।
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ॥ (ऋ. 8. 1. 5)**

– देवातिथि–देवनारायण भारद्वाज
'वरेण्यम्' अवन्तिका (प्रथम) रामघाटमार्ग, अलीगढ़–202001 (उ. प्र.)

www.thearyasamaj.org

बौद्धदर्शन और वेदांत में अन्तर्निहित समरूपता

–डॉ. किशनाराम विश्नोई

भगवान् बुद्ध का आध्यात्मिक अद्वैतवाद उपनिषदों से ही लिया गया है जो निरपेक्षतत्त्ववाद है। उसमें परमतत्त्व को प्राप्त करना ही निर्वाण है। किन्तु बुद्ध ने अपरोक्षानुभूति के लिए निर्वाण पद का प्रयोग किया है। उपनिषदों में आत्मा के लिए जिन विशेषणों का प्रयोग किया गया है, लगभग उन सभी विशेषणों का प्रयोग महात्मा बुद्ध ने निर्वाण के लिए किया है।[1] भगवान् बुद्ध के अनुसार परमतत्त्व निर्वाण है जो अतीन्द्रिय और अनिर्वचनीय है तथा स्वानुभूतिगम्य है। स्वानुभूति या बोधि से दुःखरूप अविद्याजन्य संसार–चक्र की निवृत्ति होती है। अद्वैतवाद को महात्मा बुद्ध ने शाश्वतरूप से अंगीकार किया है। इसके लिए बुद्ध उपनिषदों के ऋणी हैं। बुद्ध ने स्वयं स्वीकार किया है कि किसी नये धर्म का उपदेश नहीं दे रहे, बल्कि प्राचीन संबुद्धों और ऋषियों द्वारा साक्षात्कृत सत्य का उन्होंने भी साक्षात् अनुभव किया है और वे अपने उसी अनुभव का उपदेश दे रहे हैं।[2]

यहां यह कहना भी सर्वथा असत्य और भ्रामक है कि बुद्ध का आग्रह केवल नैतिक–साधना और योग पर था तथा उनका कोई दार्शनिक सिद्धान्त नहीं था। जब भगवान् बुद्ध से जीव, ब्रह्म, माया आदि के विषय में दार्शनिक प्रश्न किये जाते थे तो वे मौन रह जाते थे। उनके मौन का यह अर्थ लगाना सर्वथा असत्य है कि या तो वे दार्शनिक सिद्धान्तों से परिचित नहीं थे या उनके कोई दार्शनिक सिद्धान्त नहीं थे या वे अज्ञेयवादी या निषेधवादी थे। उनके मौन का अर्थ है कि इन प्रश्नों का समाधान बुद्धि विकल्पों द्वारा नहीं हो सकता, इनका समाधान तत्व–साक्षात्कार से ही हो सकता है। प्राप्ति ही जीवन का लक्ष्य होना चाहिये। बुद्ध ने अपने समय में प्रचलित कई दार्शनिक मतों का उल्लेख और खण्डन किया है तथा कहा है कि वह इन सब मतों को जानते हैं और इनसे भी अधिक जानते हैं, किन्तु इन मतों द्वारा तत्व–साक्षात्कार नहीं हो सकता क्योंकि तत्व सब मतों से, बुद्धि की चारों कोटियों से, समस्त दृष्टियों से परे है। अतः बुद्ध का मौन उनके आध्यात्मिक अद्वैतवाद का प्रतिपादक है।[3]

यहां यह कहना भी भ्रांति है कि बुद्ध ने औपनिषदिक आत्मवाद के विरुद्ध अपने नये 'अनात्मवाद' सिद्धान्त की प्रतिष्ठा करके एक नई दार्शनिक–परम्परा की स्थापना की। बुद्ध ने न तो

1. बौद्धदर्शन वेदांत, डॉ. चन्द्रधरशर्मा, पृ. 149.
2. वही, पृ. 149.
3. भारतीय दर्शन आलोचन और अनुशीलन, डॉ. चन्द्रधर शर्मा, पृ. 49.

www.thearyasamaj.org

लोकव्यवहार के प्रमाता की व्यावहारिक सत्ता का खण्डन किया और न उपनिषद् के स्वत:सिद्ध चिदानन्दरूप नित्य आत्मतत्व का खण्डन, जिसे वह 'नित्य द्रव्य' के रूप में अनेक मानता है[4] और इस प्रकार द्रष्टा को दृश्य, ज्ञाता को ज्ञेय और विषयी को विषय बना रहा है।[5] शुद्ध आत्मा बुद्धिग्राह्य नहीं है; वह परोक्षानुभूति है। किन्तु बुद्ध ने इस अपरोक्षानुभूति को शुद्ध आत्मतत्त्व की संज्ञा नहीं दी। यही अनात्मवाद के विषय में भ्रान्ति का कारण बना। उन्होंने अपरोक्षानुभूति के लिए निर्वाणपद का प्रयोग किया और उपनिषद् के ऋषियों ने शुद्ध आत्मतत्व के लिए जिन विशेषणों का प्रयोग किया उन विशेषणों का प्रयोग भगवान् बुद्ध ने निर्वाण के लिए किया है। अद्वैतवेदांत में भी आत्मा और मोक्ष में कोई अन्तर नहीं है।

हीनयान सम्प्रदाय के आचार्यों ने बुद्ध की वाणी व उपदेशों की ग़लत व्याख्याएं कीं जिनके कारण कई असंगतियाँ एवं विरोध उत्पन्न हो गये। महायान-सम्प्रदाय ने इन आन्तरिक दोषों तथा विरोधों व असंगतियों को दूर करके बुद्ध के सिद्धान्तों की सही व्याख्या करने की तार्किक आवश्यकता को पूरा करने का प्रयास किया।

यहां महात्मा बुद्ध के प्रमुख दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन तार्किक आधार पर कर वेदांत से उनकी अन्तर्निहित समरूपता का अध्ययन क्रमबद्ध रूप से किया जा रहा है। महात्मा बुद्ध ने उपनिषद् के शुद्ध चिन्दानन्दरूप निरपेक्षतत्व या अपरोक्षानुभूति का कभी खण्डन नहीं किया। अपितु उन्होंने उसे समस्त लोकव्यवहार में अधिष्ठान के रूप में स्वीकार किया।[6] उपनिषद् के अद्वैतवाद का ही उन्होंने उपदेश दिया है। उपनिषद् और बुद्ध में महत्वपूर्ण भेद यह है कि बुद्ध ने उपनिषद् के परमतत्व को शुद्ध आत्मतत्व की संज्ञा नहीं दी; वे तत्व को नेति-नेति और अनिर्वचनीय मानकर उसके साक्षात्कार पर ही बल देते रहे।[7] यही अनात्मवाद के विषय में भ्रांति का कारण बना। बुद्ध ने अपरोक्षानुभूति के लिए शुद्ध आत्मतत्त्व के स्थान पर 'निर्वाण' पद का प्रयोग किया।[8]

'आत्मा' शब्द भारतीय दर्शन में तीन विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता है। प्रथम, व्यावहारिक 'प्रमाता' के अर्थ में, जो अहंकार-ममकार का सीमित व्यक्तिनिष्ठ केन्द्र है और जो स्वसंवेदन मात्र का विषय है और अज्ञान का आवृत है, जिसे सीमित ज्ञाता, कर्ता, भोक्ता माना जाता है तथा व्यावहारिक 'जीवात्मा' की संज्ञा भी दे दी जाती है।[9] द्वितीय तात्विक 'जीवात्मा' के अर्थ में, जो स्वार्थयुक्त अहंकार का केन्द्र न होकर शुद्ध 'अहं' या व्यक्तित्व का केन्द्र है, जो अपने परिवर्तनशील पर्यायों में अपनी परिणामरहित एकता बनाये रखता है तथा जिसे नित्य चेतन-द्रव्य के रूप में स्वीकार किया जाता है, वह अनेक हैं। तृतीय विशुद्ध साक्षी या द्रष्टा के अर्थ में जो शुद्ध चैतन्य

4. भारतीय दर्शन आलोचन और अनुशीलन, डॉ. चन्द्रधर शर्मा, पृ. 49.
5. वही, पृ. 49.
6. बौद्धदर्शन और वेदांत, डॉ. चन्द्रधर शर्मा, पृ. 150.
7. वही, पृ. 151.
8. बौद्धदर्शन और वेदांत, डॉ. चन्द्रधर शर्मा, पृ. 51.
9. वही, पृ. 51.

www.thearyasamaj.org

तथा अखण्ड आदिरूप परमात्मतत्व है जो समस्त व्यावहारिक ज्ञान और अनुभव का एकमात्र अधिष्ठान होने के कारण स्वतःसिद्ध एवं शुद्ध निरपेक्ष चैतन्य होने के कारण स्वयंप्रकाश है।[10] उपनिषदों के ऋषियों ने तथा अद्वैत-वेदान्तियों ने 'आत्मा' को शुद्ध चैतन्यरूप माना है।

प्रमाता की व्यावहारिक सत्ता सभी ने स्वीकार की है। यहाँ तक कि उच्छेदवादी हीनयान सम्प्रदाय भी इसे 'प्रज्ञप्ति' सत् मानने को विवश है। बुद्ध ने आत्मा शब्द का प्रयोग इस व्यावहारिक 'प्रमाता' के लिए और 'तात्विक जीवात्मा' के लिए किया है एवं दोनों की तात्विक-सत्ता का जमकर खण्डन किया है। अपरोक्षानुभूति के लिए स्पष्टरूप में उन्होंने 'आत्मा' या 'ब्रह्म' शब्द का प्रयोग नहीं किया। किन्तु निर्वाणरूप में इसे स्वीकार करके परमतत्व की मान्यता दी है।[11] बुद्ध के सारे उपदेशों का सार बुद्धि-विकल्पों से ऊपर उठकर शील समाधि-प्रज्ञा द्वारा अपरोक्षानुभूति का साक्षात्कार करके निर्वाण प्राप्त करना है।

भगवान् बुद्ध 'आत्मा' को अहंकार-ममकार का केन्द्र मानकर उसे समस्त क्लेशों और अनर्थों का स्रोत बताते रहे क्योंकि यह रागादि दोषों को जन्म देता है, विवेक और वैराग्य को नहीं। यह भोगों की तृष्णा और आसक्ति का स्रोत है। आत्मदृष्टि, आत्म-सम्मान, आत्म-मोह और आत्म-स्नेह ये चारों क्लेश हैं। बुद्ध ने बहुत्ववादी वस्तुवाद के उस 'जीवात्मा' का भी खण्डन किया जिसे वह नित्य-चेतन-द्रव्य मानता है। यदि आत्मा द्रव्य है तो चेतन और जड़ में, ज्ञाता और ज्ञेय में, विषयी और विषय में क्या अन्तर रहेगा?

आत्मा को द्रव्य मानना उसे जड़, ज्ञेय और विषय के स्तर पर उतार देना है और उसके आत्मत्व का निषेध करना है। फिर, जीवात्माओं को अनेक मानना भी असंगत हो जायेगा। बौद्धदर्शन में जीव के लिए 'पुद्गल' और 'सत्काय' शब्दों का प्रयोग किया जाता है। पुद्गल का अर्थ है जो जन्म, जीर्णता और नाश से युक्त हों तथा सत्कार्य का अर्थ है जीवित काया को ही आत्मा मानना। दोनों शब्दों से यही ध्वनि निकलती है कि लौकिक अनुभव में नित्य आत्मा नहीं आता; यहाँ तो परिवर्तनशील शरीर-संघात और विज्ञान का ही अनुभव होता है जिनमें से कोई भी आत्मा नहीं है। ऐसी स्थिति में लोक-व्यवहार के लिए अथवा साधनामात्र के लिए 'आत्मा' की कल्पना कर भी ली जाय, तो इसमें आपत्ति नहीं, क्योंकि यह व्यावहारिक सत्ता ही है, तात्त्विक नहीं।

भगवान् बुद्ध का मानना है कि हे आनंद! आत्मा को जतलाने वाले लोग इस प्रकार उसको जताते हैं। रूप आत्मा है, वेदना आत्मा है, संज्ञा आत्मा है किन्तु आनंद! ये सब धर्म अनित्य हैं, प्रतीत्यसमुत्पन्न हैं, क्षयधर्म हैं, व्ययधर्म हैं, उत्पत्ति विनाश युक्त हैं, तो यह कैसे कहा जा सकता है कि 'यह मैं हूँ', यह मेरा रूप है या वेदना है या संज्ञा है या संस्कार है या विज्ञान है या पञ्चस्कन्ध संघात है।[12]

---

10. भारतीय दर्शनः आलोचन और अनुशीलन, डॉ. चन्द्रधर शर्मा, पृ. 57.
11. वही, पृ. 57.
12. दीघनिकाय, 15 महानिदानसुत्त।

www.thearyasamaj.org

भगवान् बुद्ध की मान्यता यही है कि असली आत्मा बुद्धि के विकल्पों द्वारा गम्य नहीं है। समस्त पदार्थ संस्कृत हैं अर्थात् कर्मसंस्कारों से उत्पन्न हैं। जो संस्कृत हैं वह अनित्य हैं, दुख रूप हैं, अनात्मा हैं, जो अनात्मा है वह मेरा नहीं है, वह मेरा आत्मा नहीं है।[13] सांख्य ने भी आत्मा को शुद्ध चैतन्य रूप मानते हुए यह स्वीकार किया कि जो अनात्मा है, वह मैं नहीं हूँ, वह मेरा नहीं है, मैं जड़-पदार्थ नहीं हूँ। इस भावना के अभ्यास से शुद्ध ज्ञान उत्पन्न होता है।

एवं तत्वाभ्यासान्नस्मि न मे नाहम् इति।
केवलमुत्पद्यते ज्ञानम्॥[14]

निर्वाण के कुछ समय पूर्व बुद्ध ने आनंद से कहा था कि – उन्होंने अपने उपदेशों में सब कुछ स्पष्ट कर दिया है, कोई बात गुप्त नहीं रखी। उन्होंने कहा–आनंद! मेरे जाने के बाद तुम शोक मत करना। तुम सबको मेरा यही कहना है–आत्मदीप बनो, आत्मशरण बनो, धर्मदीप बनो, धर्मशरण बनो।[15] बुद्ध के अन्तिम वचन ये थे–''भिक्षुओ! अब तुम्हें कहता हूँ, सब संस्कृत धर्म विनाशशील हैं, अप्रमाद के साथ प्राप्त करो।''

वय धम्मा संखारा अप्पमादेन सम्पादेथाति।
अयं तथागतस्य पच्छिमा वाचा।[16]

यदि जो अनित्य और दुःखरूप है वह अनात्मा है तो; जो नित्य और सुखरूप है वह आत्मा है। उसी आत्मा की शरण लो। उसी के प्रकाश से जगमगाओ। सब संस्कृत धर्म नाशवान् हैं। अतः उस असंस्कृत, नित्य, सुखरूप, अमृततत्व को प्रमादी बनकर प्राप्त करो। भगवान् बुद्ध ने दो बातों का उपदेश दिया है एक दुःख और दूसरा दुःख-निरोध। दुःख संसार है और दुःख-निरोध निर्वाण। दुःख की व्यापक समीक्षा करते हुए बुद्ध कहते हैं– भिक्षुओ! क्या तुम जानते हो कि इस संसार के सुदीर्घ मार्ग में दौड़ने वाले जन्म-मरण के चक्र में पिसने वाले प्राणियों ने बार-बार जन्म लेकर रो-रोकर जो आँसू बहाये हैं, वे अधिक हैं या इन महासमुद्रों का जल ? इन प्राणियों का जो रक्त बहा है, वह अधिक है या इन चारों महासमुद्रों का जल?[17] अविद्या के नाश से ही भवचक्र का नाश संभव है। यह अविद्या निरोध प्रज्ञा या निर्विकल्प अपरोक्षानुभूति से होता है और यह अनुभूति ही निर्वाण है।[18] अविद्या और क्लेश के क्षय से धीर पुरुष निर्वाण प्राप्त करते हैं।[19] बुद्ध के अनुसार क्षय अविद्या और उनके कार्यों का होता है, निर्वाण या मुक्त का नहीं।

उपनिषद् के ऋषियों ने भी शुद्ध आत्मतत्व के लिए जो विशेषण प्रयुक्त किये हैं, बुद्ध ने उनका

---

13. संयुत्त निकाय, 22.15.
14. सांख्य कारिका, 64.
15. दीघ निकाय, 16, महापरिनिब्बानसुत्त
16. दीघ निकाय, 16, महापरिनिब्बानसुत्त
17. संयुत्त निकाय, पृ. 15, 3.
18. संयुत्त निकाय, पृ. 49-55.
19. सौन्दरनंद, 16, पृ. 28-29.

www.thearyasamaj.org

प्रयोग निर्वाण के लिए किया है। उनका भी कहना है कि आत्मा 'नेति-नेति' है, निर्वाण का वर्णन भी प्राय: निषेधात्मक पदों से किया गया है। आत्मा और निर्वाण अतीन्द्रिय, बुद्धि-विकल्पातीत और अनिर्वचनीय है। नेति-नेति आत्म-विषयक वर्णनों का निषेध करता है, आत्मा का नहीं। निषोधात्मक पदों से निर्वाण के वर्णनों का निषेध होता है, निर्वाण का नहीं। आत्मा और निर्वाण दोनों ही उपशांत हैं। आत्मा और निर्वाण दोनों में अविद्या की आत्यन्तिक निवृत्ति है। दोनों ही अपरोक्षानुभूति हैं। आत्मज्ञान का साधन श्रवण-मनन-निदिध्यासन हैं। निर्वाण का साधन श्रुतमयी, चिंतामयी और भावनामयी प्रज्ञा है। निर्वाण गम्भीर, शांत, तर्कागम्य, निपुण और पंडितों द्वारा ही साक्षात् करने योग्य हैं। निर्वाण, मोक्ष के समान, सर्वदृष्टिप्रहाण और सर्वकल्पनाक्षय है।

भगवान् बुद्ध ने सब संस्कृत धर्मों को अनित्य, दु:खरूप और अनात्मा बताया है। निर्वाण संस्कृत धर्म नहीं है, निर्वाण धर्म (विषय, वस्तु, पदार्थ, ज्ञेय) भी नहीं है। निर्वाण को असंस्कृत मानकर सब संस्कृत धर्मों से भिन्न और असंस्कृत धर्मों के ऊपर सर्वोच्च धर्म स्वीकार करना भी निर्वाण का उपहास करना है। निर्वाण धर्मों की धर्मता है, निर्वाण सब धर्मों में व्याप्त है और सब धर्मों से परे है; वह निरपेक्ष परमतत्त्व है। जिस प्रकार आत्मतत्व के लिए उपनिषदों में प्रपञ्चोपशम, शिव, अद्वैत, अमृत, अभय, चिन्मात्र, आनंद आदि विशेषणों का प्रयोग हुआ है, उसी प्रकार बुद्ध ने भी निर्वाण को अच्युत, अमृत, अकुतोभय, परमसुख आदि पदों से विशिष्ट किया है।[20] बुद्ध वचन के अनुसार यह अज्ञात, अमृत, अकृत, असंस्कृत तत्त्व है, इसलिए यह जात, नश्वर, कृत और संस्कृत धर्मों का आधार है। उनका कहना है कि-

यस्मा च खो भिक्खवे!
अत्थि अजातं अमतं अकतं असंखतं
तस्मा ज्ञातस्य मतस्य कतस्य
संखतस्य निस्सरणं पञ्जाय।[21]

निर्वाण को क्षेम, नैष्ठिक[22], अच्युतपद एवं शांत और शिव[23] तथा दुर्लभ, शांत, अजर, अमृत और पर पद बताया गया है।

दुर्लभं शान्तमजरं परं तदमृतं पदम्।[24]

भगवान् बुद्ध के अन्तिम शब्द थे कि - भिक्षुओ! सब संस्कृत धर्म नश्वर हैं, प्रमाद के साथ अमृत निर्वाण प्राप्त करो।[25]

माध्यमिक दर्शन ने भगवान् बुद्ध के उपदेशों को उनके सही रूप में प्रतिपादित किया। माध्यमिक दर्शन और अद्वैतवेदांत में काफी साम्य है। बुद्ध के समान माध्यमिक ने भी दर्शनतत्व का वर्णन निषेध-मुख से किया है और तत्व के लिए निर्वाणपद का प्रयोग किया है। सविकल्प-बुद्धि

---

20. निब्बानं पदमच्चुतम। सुतनिपात, रतनसुत
निब्बानं अकुतोभयम। इतिवुत्तक, 112,
निब्बान परमसुखम्। धम्मपद, 18.
21. उदान, 73 सूत्र।
22. सौन्दरानन्द, 16, 27.
23. सौन्दरानन्द, 16, 26.
24. बुद्धचरित्र, 12, 106
25. बुद्धचरित्र, पृ. 59.

www.thearyasamaj.org

की कोटियाँ, दृष्टियाँ, कल्पनाएँ तत्त्व के स्वरूप को प्रकाशित करने के स्थान पर उसे अन्यथारूप में प्रतीत कराती हैं। तत्त्व चतुष्कोटि विनिर्मुक्त है और उसका साक्षात्कार निर्विकल्प बोधि, प्रज्ञा या अनुभूति से ही हो सकता है। नागार्जुन और चक्रकीर्ति के द्वान्दात्मक तर्क के आगे समस्त बुद्धि-ग्राह्य पदार्थ सद्सद्-विलक्षण और मृषा सिद्ध होते हैं। माध्यमिक दर्शन में द्वन्द्वात्मक तर्क पद्धति को गौड़पादाचार्य और श्रीहर्ष ने भी अपनाया है। माध्यमिक के परमार्थ, तथ्यसंवृति और मिथ्यासंवृति, वेदान्त के परमार्थ, व्यवहार और प्रातिभासिक के समान हैं। माध्यमिक के अजातिवाद का अनुमोदन गौड़पादाचार्य ने अपनी कारिकाओं में किया है।[26] श्रीहर्ष ने स्पष्ट स्वीकार किया है कि माध्यमिक और वेदांत के तर्कों का खण्डन नहीं हो सकता तथा इन खण्डनों की सार्वपथीनता निर्बाध है।[27]

माध्यमिक के अनुसार संसार और निर्वाण, बंधन और मोक्ष वस्तुतः अभिन्न हैं। निर्वाण अविद्या निरोध है। निर्वाण पूर्व समस्त लोकव्यवहार संवृति-सत्य है। निर्वाण अपरोक्षानुभूति है जिसे शून्यता, धर्मता और बोधि कहा जाता है। यही अभय और अमृत अद्वैत पदार्थ है। माध्यमिक दर्शन का अद्वैत वेदांत से साम्य स्पष्ट है। माध्यमिक ने परमतत्त्व को आत्मा या नित्य स्वप्रकाश-विज्ञान संज्ञा से अभिहित नहीं किया। भगवान् बुद्ध के समान माध्यमिक ने तत्व के लिए नेति-नेति का प्रयोग किया है। माध्यमिक का आग्रह तत्व-साक्षात्कार पर है, तत्व के विधिमुख निरूपण पर नहीं है। नागार्जुन ने तत्व को अपर-प्रत्यय अर्थात् स्वानुभूतिगम्य, प्रपञ्चशून्य, निर्विकल्प, अनानार्थ या भेदरहित बताया है।[28] प्रतीत्यसमुत्पाद को उत्पत्ति-विनाश रहित, प्रपञ्चोपशम और शिव कहा है।[29] ये आत्मा या ब्रह्म के वर्णन के समान है। यद्यपि निर्वाण या तत्त्व को स्पष्टरूप से आत्मा विज्ञान या आनंद नहीं कहा गया तथापि अर्थापत्ति से यही भाव निकलता है, क्योंकि जो स्वानुभूतिगम्य, प्रपञ्चोपशम और शिव है, वह विज्ञान और वह 'नंदस्वरूप ही हो सकता है।

वस्तुतः मूलविज्ञानवाद विशुद्ध विज्ञप्तिमात्र तत्व के नित्य और सुख रूप को स्वीकार करता है। इसके अतिरिक्त अन्य विज्ञान क्षणिक हैं। लंकावतारसूत्र का चित्तमात्र या तथागतगर्भ या आलयविज्ञान, मैत्रेयनाथ का विज्ञानमात्र या धर्मधातु, जिसे उन्होंने 'महात्मा' और 'परमात्मा' भी कहा है, वसुबन्धु का विज्ञप्तिमात्र या धर्मकाय, ये सब नित्य, निर्विकल्प, निराभास, विशुद्ध अद्वय और सुखरूप विज्ञानमात्र तत्त्व हैं। 'लंकावतारसूत्र' अपने तथागतगर्भ में और वेदांत के आत्मतत्व में साम्य परिलक्षित करता है एवं दोनों में भेद बताते हुए कहता है कि तथागतगर्भ निर्विकल्प और निराभास 'प्रज्ञागोचर है किन्तु

26. गौडपादाचार्य माडूक्यकारिका, पृ. 236-37, गीता प्रेस गोरखपुर, हिन्दी अनुवाद सहित।

27. वही, पृ. 292.

28. माध्यमिक कारिका, 18/9, गौडपादकारिका, 4/19.

29. वही, मंगलाचरण।

www.thearyasamaj.org

अबौद्धों का आत्मा सत् रूपी बुद्धिविकल्प से चिपका रहता है। परन्तु यह भेद असत्य है।[30]

भगवान् बुद्ध के अनुसार 'आत्मा' अहंकार ममकारयुक्त व्यावहारिक जीवात्मा है जो अनादि अविद्या का कार्य है तथा मोह-मान-रागादि के कारण समस्त क्लेशों का हेतु है। किन्तु विशुद्ध नित्य विज्ञानस्वरूप तत्व के लिए 'महात्मा' विशुद्धात्मा तथा परमात्मा शब्दों का प्रयोग किया है। उनके अनुसार बुद्धजन शुद्ध आत्मा की प्राप्ति से परिच्छिन्न जीवत्व से मुक्त होकर आत्मा की महत्ता अधिगत कर लेते हैं।[31] यह बुद्ध का विशुद्ध धर्मकाय या धर्मधातु है, यही परमात्मा हैं।

अनेन बुद्धानामनास्त्रवे धातौ

परमात्मा व्यवस्थाप्यते।[32]

सविकल्प बुद्धि की पहुँच तत्त्व तक नहीं है। तर्क आगम-निश्रित है, अनियत है, सीमित है, सांवृत और खेदवान् है तथा उसका विषय नहीं है।

निश्रितोऽनियतोऽव्यापी सांवृतखेदवानपि।
वालांश्रयीमतस्तर्कस्तस्याऽतो विषयो न तत्।[33]

जीवात्मा की सता व्यावहारिक है और अविद्या के नष्ट होने पर शुद्ध नित्य विज्ञान प्रकाशित होता है। भ्रम या अविद्या का आत्यंतिक क्षय ही मोक्ष है।

ततत्वमोक्षो भ्रममात्रसंक्षयः[34]

चित या विचार प्रकृतिप्रभास्वर अर्थात् स्वयःप्रकाश है। **मतं च चित्तमं प्रकृतिप्रभास्वर।**[35] यह आगन्तुक अविद्या के दोषों से दूषित प्रतीत होता है। अविद्या की निवृत्ति होने पर अपने स्वरूप में प्रकाशित होता है। धर्म नेरात्य और पुद्गलनेरात्य के सम्यक् ज्ञान से ज्ञोयावरण तथा क्लेशावरण का क्षय होता है। तब मुमुक्ष को तत्व की समता और अद्वयता का ज्ञान होता है और वह तत्व में प्रवेश कर जाता है। किन्तु यह संप्रज्ञात या सोपनिधिशेष समाधि है, जिसमें सूक्ष्म द्वैत बना रहता है। फिर जब मन उसमें स्थिर होकर विलीन हो जाता है तो यह अमनीभाव या असंप्रज्ञात या निरूधिशेष समाधि है जहाँ कोई विकल्प, ग्रहण या उपलम्भ नहीं रहता। यही मुक्ति है।

विदित्वा नैरात्म्यं द्विविधमिह धीमान भवगतम्
समं तच्च ज्ञात्वा प्रविशति स तत्वं ग्रहणतः।
ततस्तत्र स्थानान् मनस इह न ख्याति तदपि
तदख्यानं मुक्तिः परम उपलम्भस्य विगमः।[36]

बौद्ध विज्ञानवाद और अद्वैतवेदांत का मुख्य भेद यह माना जाता रहा है कि विज्ञानवाद के विज्ञान क्षणिक अनेक और उत्पति विनाशशील है जबकि अद्वैतवेदांत आत्मचैतन्य स्वरूप विशुद्ध विज्ञान को नित्य, एक और अद्वैततत्व को नित्य और स्वप्रकाश विज्ञान स्वीकार करता है तथा

30. लंकावतारसूत्र, पृ. 77-78.
31. महायानसूत्रालंकार, 9/23.
32. वही, पृ. 37-38.
33. महायानसूत्रालंकार, 1/12.
34. महायानसूत्रालंकार, 6/1.
35. वही, पृ. 13/19.
36. महायानसूत्रालंकार, 11/47.

www.thearyasamaj.org

अन्य सब विज्ञानों को क्षणिक मानता है। अतः मूल विज्ञानवाद और वेदांत में इस विषय में तात्विक भेद नहीं है। किन्तु दिङ्नाग, धर्मकीर्ति शांतरक्षित और कमलशील के उत्तर विज्ञानवाद ने, जिसे हमने स्वतंत्रविज्ञानवाद का नाम दिया है, क्षणभ वाद को पूर्णतया अपना लिया है तथा क्षणिक विज्ञानों की ही सत्ता स्वीकार की है। अतः स्वतंत्र विज्ञानवाद क्षणिक विज्ञानवाद होने के कारण अद्वैत वेदांत के नित्य विज्ञानवाद से सर्वथा भिन्न है।

विज्ञानवाद परमार्थ और व्यवहार दोनों में विज्ञानवाद को स्वीकार करता है। अद्वैतवेदांत परमार्थ में विज्ञानवाद और व्यवहार में वस्तुवाद को मानता है। व्यावहारिक वस्तुवाद पारमार्थिक विज्ञानवाद के साथ सुसंगत है। विज्ञानवाद ने भी विज्ञानवाद अपनाकर समस्त लोक-व्यवहार का व्यर्थ निषेध कर दिया है। विज्ञानवाद पदार्थ या विषयमात्र को, जिसके अर्न्तगत बाह्य पदार्थ, जीवात्माएं तथा विचार-वेदना संकल्प आदि मनोभाव आ जाते हैं और इस प्रकार समस्त लोक-व्यवहार आ जाता है, नितान्त असत् अर्थात् वन्ध्यापुत्र और खपुष्प के समान मानता है। सांवृत सत्ता भी अर्थाकार विज्ञानों की है, पदार्थों की नहीं। व्यवहार में भी हमें अर्थकार विज्ञानों का अनुभव होता है, पदार्थों का नहीं। इसी को व्यावहारिक विज्ञानवाद कहते हैं। वेदांत इसका प्रबल विरोध करता है और मानता है कि व्यवहार में हमें पदार्थों का ही अनुभव होता है, अर्थाकार विज्ञानों का नहीं। यह व्यावहारिक वस्तुवाद है।

विज्ञानवाद के अनुसार रज्जु-सर्पादि भ्रम-पदार्थ तथा स्वप्न-दृष्ट पदार्थ और जाग्रत अवस्था के लौकिक पदार्थ सब, भ्रम होने के नाते, समान स्तर के हैं। इन सब में विज्ञान ही अर्थों का आकार लेकर प्रतीत होते हैं। स्वप्नादि पदार्थों की भी, जाग्रत के पदार्थों के समान, अपने-अपने स्तर पर उपलब्धि होती है और उनसे अर्थक्रिया सम्पन्न होती है। वेदांत की मान्यता है कि यद्यपि प्रतिभास का बोध व्यवहार से हो जाता है, किन्तु व्यवहार का बोध व्यवहार से नहीं हो सकता। परमार्थ से ही हो सकता है। स्वप्न-पदार्थ, व्यक्तिगत, जीवसृष्ट, प्रतिभासमात्र, शरीर तथा इन्द्रियव्यापार रहित होते हैं। लौकिक पदार्थ समष्टिगत, ईश्वरसृष्ट, हृदयकलिक तथा इन्द्रियप्रत्यक्षजन्य होते हैं। दोनों को एक ही स्तर पर रखना अत्यन्त अनुचित है।

प्रत्येक भ्रम-पदार्थ के दो अंश होते हैं- द्रव्यांश और आकारांश। ये दोनों अंश अविभाज्य होते हैं। विज्ञानवाद ने द्रव्यांश को नितान्त असत् और आकारांश को सांवृत सत् मान लिया है। द्रव्यांश या पदार्थ परिकल्पित और आकारांश विज्ञान में होने के कारण अर्थकार विज्ञान परतंत्र या संवृति सत् हैं। वेदांत के अनुसार यह विभाजन असत् और कल्पित है।

विज्ञानवाद तत्त्व के दो रूप मानता है। एक तत्व का पारमार्थिक स्वरूप जिसमें वह निर्विकल्प निराभास विशुद्ध परिनिष्पन्न विज्ञानमात्र है और दूसरा अनादिवासना द्वारा तत्व

www.thearyasamaj.org

का कलुषित स्वरूप जो प्रतीव्य समुत्पन्न द्वारा तत्व का कलुषित स्वरूप जो प्रतीव्यसमुत्पन्न अष्टविध विज्ञानों के रूप में प्रवहमान है जिसे परतंत्रविज्ञान कहा गया है। परिनिष्पन्न और परतंत्र दोनों विज्ञान के रूप हैं। प्रथम परमार्थ है दूसरा संवृति। पदार्थ अत्यंत असत् है, जिसे परिकल्पित कहा गया है। वेदांत परमार्थ का विभाजन नहीं करता। वह भ्रम दो रूपों में विभाजित करता है समष्टिगत भ्रम व्यवहार है और व्यक्तिगत भ्रम प्रतिभास है।

विज्ञानवाद भ्रम का विभाजन नहीं करता। वह समष्टिगत और व्यष्टिगत भ्रम को एक ही स्तर पर रखता है तथा प्रत्येक भ्रम के दो घटक मानता है। पदार्थ और पदार्थकार विज्ञान। पदार्थ नितान्त असत् और परिकल्पित है किन्तु पदार्थकार विज्ञान परतंत्र या संतृति सत् है। वेदांत के रज्जुसर्पप्रतिभास में सर्पाकार-विज्ञान परतंत्र और सर्पपदार्थ परिकल्पित है। इसी प्रकार व्यवहार में भी रज्जु का आकार लेकर प्रतीत होने वाला आलयविज्ञान परतंत्र और रज्जुपदार्थ परिकल्पित है। वेदांत के इन दो घटकों को स्वीकार नहीं करता। उसके अनुसार भ्रम दो घटक अधिष्ठान और अध्यस्त हैं। प्रतिभास में रज्जु अधिष्ठान और सर्प अध्यस्त है। व्यवहार में ब्रह्म अधिष्ठान और जगत् अध्यस्त हैं।

विज्ञानवाद के अनुसार विशुद्ध-विज्ञानरूपी अधिष्ठान पर अर्थाकार का आरोप होता है और फिर अर्थाकार विज्ञानरूपी आश्रय पर असत् अर्थ का आरोप होता है। रज्जुसर्प के भ्रम में सर्प का बाह्यपदार्थ समझना भ्रम है क्योंकि सर्प पदार्थ अत्यन्त असत् और परिकल्पित है। भ्रम को ही लौकिक ज्ञान कहते हैं। सर्प को अर्थ न मानकर अर्थाकार विज्ञान मानना प्रमा है। यह शुद्ध लौकिक ज्ञान है। अनादिवानाक्षय से विज्ञान का अर्थाकार ग्रहण न करके अपने विशुद्ध परिनिष्पन्न रूप में प्रकाशित होना लोकोत्तर ज्ञान या मोक्ष है। वेदांत इन सबका खण्डन करता है। यदि पदार्थ वन्ध्यापुत्रवत् असत् है तो उसका अर्थाकार विज्ञान पर आरोप और उसकी प्रतीति असम्भव हैं। वन्ध्यापुत्र की कभी प्रतीति नहीं होती। अर्थाकार विज्ञान इस आरोप का आश्रय नहीं हो सकता क्योंकि केवल अनुमान होता है, प्रतीति नहीं होती। भ्रम के समय सर्पपदार्थ की प्रतीति होती है, सर्पाकार विज्ञान की नहीं। रज्जुज्ञान से भ्रम का बोध होने पर सर्पपदार्थ और सर्पाकार विज्ञान दोनों एक साथ निवृत्त हो जाते हैं। पुनश्च, यदि अर्थ नितान्त असत् है तो विज्ञान उसका आकार भी ग्रहण कर सकता है। अर्थ के बिना अर्थाकार सम्भव नहीं है।

विज्ञानवाद विज्ञान-भेद वासना-भेद के कारण मानता है। वेदांत के अनुसार विज्ञान-भेद पदार्थ-भेद के कारण है। विज्ञानवाद के अनुसार वासना और विज्ञान, बीज और अंकुर के समान, परस्पर उत्पन्न-विनष्ट होते रहते हैं। वेदांत अनादि अविद्या को स्वीकार करता है। यदि विज्ञानों को क्षणिक माना जाय, जैसा स्वतंत्र विज्ञानवाद मानता है और नित्य विज्ञान को स्वीकार न किया जाय तो

www.thearyasamaj.org

वे क्षणिक विज्ञान अनित्य, अनेक और उत्पत्ति विनाशशील होने के कारण घटपटादि के समान नित्य आत्मतत्त्व द्वारा विषय के रूप में ज्ञेय है। क्षणिक विज्ञान स्वप्रकाश और स्वत:सिद्ध है जिसे माने बिना किसी प्रकार का ज्ञान या अनुभव सम्भव नहीं है।

बौद्ध विज्ञानवाद और अद्वैतवेदांत में महत्वपूर्ण भेद है। अद्वैतवेदांत बौद्ध विज्ञानवाद से अत्यन्त श्रेष्ठ है। स्वयं बुद्धदेव ने विज्ञानवाद के जो बीज उपनिषद् से लिए थे उनको बुद्धोपदेश के रूप में ग्रहण कर, बौद्ध विज्ञानवाद का विकास किया। अद्वैत वेदांत ने अपने मूल प्रस्थापन उपनिषद् के विज्ञानवाद का अपनी श्रौतपरम्परा के अनुसार विकास किया। औपनिषद-विज्ञान के विकास क्रम में बौद्ध विज्ञानवाद पूर्वभूमि और अद्वैत-वेदांत उत्तरभूमि है। दोनों के निरपेक्ष अद्वैतवाद तथा नित्य विज्ञानवाद के दार्शनिक सिद्धान्तों का मूल स्रोत उपनिषद् ही हैं। बौद्ध-दर्शन में ये सिद्धान्त स्वयं बुद्ध द्वारा गृहित होकर उनके उपदेशों के रूप में प्राप्त होते हैं। अद्वैत-वेदांत में ये साक्षात् उपनिषद्-प्रस्थान से लिये गये। बौद्ध और अद्वैत वेदांत सम्प्रदाय केवल दर्शन ही नहीं, धर्म भी हैं। दोनों की दार्शनिक परम्परा में महत्वपूर्ण समानता होने पर भी दोनों की धार्मिक परम्परा नितान्त भिन्न हैं। दोनों में कुछ महत्वपूर्ण साम्य उन्हीं सिद्धान्तों के विषय में हैं जो उपनिषद् से बुद्ध के माध्यम द्वारा बौद्धदर्शन में विकसित हुए। अत: वेदांत से यह साम्य कुछ बुद्धवचनों में और माध्यमिक एवं मूल विज्ञानवाद के महायान सम्प्रदायों में ही हैं, हीनयान के सम्प्रदायों में और महायान के स्वतंत्र विज्ञानवाद सम्प्रदाय में नहीं हैं। महायान के माध्यमिक और विज्ञानवाद सम्प्रदायों में से श्रौतदार्शनिक सिद्धान्त बुद्धोपदेश के रूप में ही आये और इनका विकास बौद्धों की अवैदिक धार्मिक परम्परा में हुआ। अत: महायान दर्शन और अद्वैतवेदांत में इन औपनिषद सिद्धान्तों के विकास में कुछ महत्वपूर्ण भेद आ जाना स्वाभाविक है। अत: अद्वैत वेदांतदर्शन की माध्यमिक और विज्ञानवाद दर्शन पर सर्वांगीण श्रेष्ठता स्पष्ट सिद्ध है।

–प्रभारी, गुरु जम्भेश्वर धार्मिक अध्ययन संस्थान,
गुरु जम्भेश्वर विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा) 125001

www.thearyasamaj.org

शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय की औपन्यासिक त्रयीः चरित्रहीन

–डॉ. भवानीलाल भारतीय

शरत् चटर्जी की प्रसिद्ध औपन्यासिक त्रिपुटी (पथ के दावेदार, श्रीकान्त, चरित्रहीन) में हम प्रथम दो की विस्तार से चर्चा कर चुके हैं। पथ के दावेदार में राजनैतिक विचार हैं तो श्रीकान्त की भ्रमण कहानी बंगप्रदेश के नागर तथा ग्राम्य जीवन की विविधतापूर्ण झांकी प्रस्तुत करती है। चरित्रहीन उपन्यास का शीर्षक भले ही चौंकाने वाला हो, उसका प्रतिपाद्य स्वस्थ दाम्पत्य के आदर्श को प्रस्तुत करता है। इस उपन्यास के विषय में एक रोचक संस्मरण सुनें। एक साहित्यिक गोष्ठी, जिसमें स्वयं शरत् बाबू उपस्थित थे, 'चरित्रहीन' पर गरमागरम चर्चा हो रही थी। स्वयं लेखक (शरत्) मंच पर उपस्थित थे। अचानक श्रोतासमाज से एक युवती उठ कर मंच पर आई, चटर्जी महाशय के चरणों में प्रणिपात करने के पश्चात् कहने लगी। "उस समय मेरी चढ़ती जवानी थी। एक समवयस्क युवा के दिखावटी प्रेम जाल में फंस गई। हम दोनों ने निश्चय किया कि अमुक दिन आधी रात के बाद हम भाग चलेंगे। निश्चय यह हुआ कि तब तक समय काटने के लिए मेरा प्रेमी कोई उपन्यास लायेगा, उसे पढ़ते-पढ़ते आधी रात हो जायेगी और हम घर छोड़ देंगे। संयोग से वह उपन्यास 'चरित्रहीन' ही था। उसे समाप्त करते-करते मेरे विचार बदल गये। उपन्यास में उल्लिखित विधवा किरणमयी और नौजवान दिवाकर के गुपचुप अराकान (बर्मा) भाग जाने और बाद में पछताने का रोमांचक दृश्य मेरे समक्ष आ गया। आधी रात को मेरा प्रेमी जब मुझे लेने आया तब तक मैं बदल चुकी थी। मैंने उसे धता बताया। इस प्रकार 'चरित्रहीन' ने मुझे दुश्चरित्र होने से बचा लिया।"

इस पर शरत् बाबू का कहना था कि यदि मेरी इस कृति से एक युवती के चरित्र की रक्षा हुई तो मेरा कृतित्व सफल रहा। यदि 'शेष प्रश्न' को विचारप्रधान उपन्यास कहा जाये तो चरित्रहीन को चरित्रप्रधान उपन्यास कहना होगा। यहां न तो पात्रों का बाहुल्य है और न घटनाओं की जटिलता। प्रधान पुरुषपात्र हैं, उपेन्द्र, सतीश, हारान बाबू। ज्योतिषराय की भूमिका सीमित है। नारी-पात्रों में एक ओर सुरबाला, सती सावित्री का प्रतिरूप है तो इसके विपरीत हारान की युवा, सुन्दर पत्नी किरण को ही लेखक ने चरित्रहीन परोक्षतया कहा है। लेखक ने इसमें सावित्री जैसा आदर्श पात्र लाकर खड़ा किया है। सावित्री ब्राह्मण कुलोत्पन्न युवा बाल-विधवा है। माता-पिता मर चुके हैं और अब वह बासे (एक प्रकार का बोर्डिंग हाउस) में दासी का काम कर जीविका चलाती है। पुरुष प्रधान बासे में रह कर अपने चरित्र की रक्षा करना कितना कठिन है, इसे समझना भी सहज है, किन्तु सावित्री अपने चरित्र को कमलपत्र पर रखी जल की बूंद की भांति बचाये रखती है। होमियोपैथी की पढ़ाई करने आये युवा सतीश से उसका प्रेम अन्त तक गोपनीय ही रहा। मृत्युशैया पर पड़े उपेन दा जब

www.thearyasamaj.org

सतीश का सम्बन्ध ब्राह्मण परिवार में पली संस्कार-शीला युवती सरोजिनी से निश्चित कर देते हैं तो वे स्वयं अनुभव करते हैं कि वे सावित्री के प्रति अन्याय कर रहे हैं जो सतीश की पत्नी का स्थान लेने की प्रथम हकदार है। किन्तु वे अपनी विवशता को सावित्री के समक्ष इस प्रकार व्यक्त करते हैं–"**अब आसक्ति का बंधन तुम्हारे लिए नहीं है सावित्री! दुर्भाग्य ने यदि तुम्हें तट के बाहर लाकर फेंक दिया है बहिन, तो अब उसके अन्दर जाने की इच्छा न करना। सदा बाहर रहकर ही उसे कलेजे में बसाये रहो, यही है मेरा अनुरोध।**"

निश्चय ही परिस्थितियों ने सतीश के हृदय में सावित्री को लेकर अनेक बार शंकाएं-कुशंकाएं उठीं किन्तु अन्ततः उसने सावित्री के प्रेम को अनुभव कर ही लिया। सुरबाला आदर्श पत्नी, आदर्श गृहिणी तथा पतिप्रेम से पगी कलियुग में सीता का-सा आदर्श उपस्थित करती है। इसके ठीक विपरीत किरणमयी चाहे आन्तरिक दुर्बलता-वश कहें या घटनाओं के आघात प्रतिघात से त्रस्त, पहले डॉ. अनंग मोहन के मोह-जाल में फंसी तो अन्ततः दिवाकर को पथभ्रष्ट कर अपने मोहजाल में फंसाने में सफल रही। दोनों का बर्मा जाना 'श्रीकान्त' में अभया के रंगून जाने से पर्याप्त मिलता है। तत्कालीन बर्मा भारत का ही एक प्रान्त था, स्वयं शरत् यहां के रेलवे एकाऊंट्स विभाग में क्लर्की कर चुके थे। इसलिए उनके उपन्यासों में बर्मा में प्रवासी हिन्दुस्तानियों की जीवनकथा का यथार्थ वर्णन मिलना आश्चर्य नहीं है।

पुरुष पात्रों में उपने दा गुरु गम्भीर बड़े भाई की भूमिका में हैं तो उनसे आयु में छोटा सतीश जो मित्र से ज्यादा भाई जैसा है, अस्थिरमति युवक है। तथापि उसकी उपेन दम्पती में अगाध भक्ति है, यदि वह किरण से बहिन का नाता जोड़ता है तो अन्त तक उसे निभाता है। नौकर बिहारी का सेवाभाव और स्वामिभक्ति अवर्णनीय है।

शरत् के उपन्यासों में तत्कालीन उस कलकत्ता का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है जब सड़कों और घरों में बिजली की रोशनी नहीं आई थी, गैस की बत्तियां इस महानगर की सड़कों पर टिमटिमाती थीं। उस ज़माने में कलकत्ता में मोटरकार का प्रचलन नहीं हुआ था, घोड़ागाड़ियों में किराया देकर गन्तव्य स्थान तक जाना पड़ता था। बासे नामक शरणगाह थे जहां किराये पर निवास की व्यवस्था थी तथा सामूहिक रसोई में भोजन बनता था। बंग अस्मिता का तकाजा तो तत्कालीन उपन्यासों में मुखर हुआ ही है जब हम बंगाली भद्रलोक को हिन्दीभाषी भारत के लिए **पछांह** (पश्चिम देश) तथा अन्य भारतीयों के लिए 'हिन्दुस्तानी' का सम्बोधन प्रयुक्त करते हुए देखते हैं। बंगालियों का आवागमन, काशी, इलाहाबाद तथा बिहार तक ही महदूद था। निश्चय ही 'चरित्रहीन' नाम चाहे कैसा ही लगे, यह उपन्यास लेखक की एक शीर्षस्थ कृति है।

–3/15 शंकर कालोनी, श्रीगंगानगर

www.thearyasamaj.org

कहानी –

होगा नया विहान

– डॉ. सुधांशुमोहन अग्निहोत्री

पत्रिका के सम्पादक ने फोन पर कहा था– कुछ वार्षिक सदस्य बना लें, फुटकर बिक्री की भी व्यवस्था करें, विज्ञापन भी जुटा लें .....। मैं उस परचून वाले के पास पहुँच गया। पत्रिका लेकर जिससे रोज दूध का पैकेट, चाय, बिस्किट, चीनी, साबुन आदि खरीदता हूँ। मैंने उसे समझाया 'देखो भैया, मैं इस पत्रिका में काम कर रहा हूँ, कवितायें, कहानियाँ छपती हैं, राजनीति से कोई मतलब नहीं है, किसी के खिलाफ नहीं लिखा जाता है, केवल एक सौ पचास रूपये सालाना चन्दा है, हर महीने डाक से आया करेगी।' उसने पत्रिका को हाथ में लेकर तौला था। फिर आत्मीयता के साथ बोला 'भाई साहब, मैं इतना कर सकता हूँ, जितनी पत्रिकायें बच जायें आप मुझे दे देना। बैसे किताब का भाव कम है लेकिन आप अपने आदमी हो इसलिये आठ रूपये में ही लगा दूँगा।' मैंने झपटकर पत्रिका छीन ली थी उससे। चेहरा तमतमा गया था। क्रोधावेश में सिर्फ इतना ही कहा था– 'बन्दर क्या जाने अदरक का स्वाद ?' फिर पड़ोस में एक किताबों की दुकान पर जाकर बैठ गया था। दुकान के बाहर बरामदे में पड़ी कुसियों में से एक पर एक चालीस साल की महिला एक भारी–सा बैग लिये बैठी थी। उसने मुझसे पूछा– 'सर, शेविंग मशीन और क्रीम लेंगे ?' 'क्या आप बेचती हैं ?' मैंने भी सवाल किया था। इस पर वह भावुक हो उठी थी। बताने लगी कि– 'क्या करें भाई साहब, पति की नौकरी छूट गई। बीमार भी रहते हैं। तीन बच्चे हैं। मजबूरी में यह सब करना पड़ रहा है।' मुझे लगा वह रो पड़ी थी और पर्स से रूमाल निकालकर आँसुओं को सुखाने के लिये यत्नशील हो गई थी।

मुझे याद आया। जून की एक दोपहरी में दुमंजिले मकान के बरामदे में बैठा मैं देख रहा था एक सेल्स गर्ल को जो बैग लटकाये हर दरवाजे पर जाकर काल–बेल बजाती और दरवाजा न खुलने पर आगे बढ़ जाती थी। एक दरवाजा खुला था, कोई नौकरानी जैसी महिला निकली, जिसने रुखाई के साथ उसे टरका दिया। 'कितना संवेदनहीन हो गया है हमारा सभ्य, सुसंस्कृत समाज'! मैंने सोचा। मजबूर व्यक्ति को कोई अपने पास बैठने तक नहीं देता, एक गिलास पानी तक नहीं पिलाता। मैं वहाँ से उठकर सड़क के किनारे चुपचाप चलने लगा। कितने वाहन सरपट भागे चले जा रहे थे। लोगों के पास समय नहीं है। सड़क के दोंनो ओर कुछ कबाड़ी, मज़दूर

www.thearyasamaj.org

और रिक्शेवाले बसे हुये थे। ऐसे लोग जिन्हें भरपेट भोजन नहीं मिलता, अच्छे कपड़े नसीब नहीं होते, बच्चों को पढ़ाने की क्षमता नहीं है। आगे देखा, सड़क पर भीड़ लगी है। कोई कार किसी बड़े वाहन से टकरा गई थी। दो लोग घायल पड़े कराह रहे थे। बहुत से लोग तमाशाई बने उन्हें देख रहे थे। स्वार्थान्ध लोग भी समस्या-ग्रस्त होने पर समाज की सहानुभूति और सहायता चाहने लगते हैं, मैंने सोचा। तभी शोर मचने लगा- 'मंत्री जी आ रहे हैं---।' मंत्री जी की लाल बत्ती लगी गाड़ी गुजरी। पीछे काफिला चल रहा था। एक बुढ़ऊ जो काफी देर से मेरे साथ-साथ खामोशी से चल रहे थे, अचानक बोल पड़े- 'भइया, यह देश कभी सुधरने वाला नहीं, ये नेता और अफसर हमें लूटते रहेंगे।' मैंने उन्हें टोका अरे नहीं चाचा, अब जागृति आ रही है। व्यवस्था बदलेगी। भ्रष्टाचारी जेल के सींखचों में कैद होंगे।'

बुढ़ऊ हँसने लगे। मेरे कंधे पर हाथ रखकर बोले - 'कितने नेता जेल गये हैं ? जाँच का ड्रामा चलता है। जाँच करने वाले क्या दूध के धुले हैं। अदालतें भी तो भ्रष्ट हो चुकी हैं। जनता की बात करते हो तो यह बताओ कौन सुधार चाहता है। जनता ईमानदार होती तो बेईमानों को सिंहासन क्यों सौंपती। मैं अंग्रेजों के जमाने में पैदा हुआ था। सुभाष बाबू का साथ जनता ने दिया होता तो उन्हें जर्मनी क्यों भागना पड़ता ? सावरकर की जिन्दगी अण्डमान की जेल में बीत गई। वासुदेव बलवन्त फड़के को लंदन की जेल में यातनायें देकर मारा गया था। आज भी जो सच बोलेगा, उसकी दुर्दशा की जायेगी। कोई साथ नहीं देगा मेरे बेटे---कोई नहीं---॥'

चाचा फफक- फफक कर रोने लगे। चाय की एक छोटी-सी दुकान के बाहर पड़ी बेंच पर मैंने उन्हें बिठा दिया। पानी पिलाया, आश्वस्त होनेपर उन्होंने पूछा 'क्या काम करते हो बेटा?' 'मैं पत्रकार हूँ। कवितायें और कहानियाँ भी लिखता हूँ।'' मैं बोला ।इस पर वह फिर समझाने लगे थे- 'अखबार पूँजीपतियों के निकलते हैं। लेखकों का शोषण होता है। कितने प्रतिभा-सम्पन्न लेखकों का जीवन प्रूफरीडिंग करते या विज्ञापनों की भीख माँगते-माँगते बीत जाता है। बेखौफ होकर लिखा तो यमलोक पहुँचा दिये गये। कलम से क्रान्ति का सपना मत देखो मेरे लाल।' मैंनें चाय मँगा ली थी। चाचा चाय की चुस्कियाँ लेते हुये कह रहे थे- 'मैं भी अखबार चलाता था। खेती भी थी। परिवार के कई लोगों को मरवा दिया बेईमानों ने। खेती बिक गई। अखबार बन्द हो गया। घर छूट गया। अब एक प्राईवेट कम्पनी में काम करके जीवन यापन कर रहा हूँ। किसी को नहीं बताता कि पत्रकारिता से मेरा कोई रिश्ता है। अखबार भी जोर-जोर से पढ़ता था तो बेईमानों के कान खड़े हो जाते थे और मुझे परेशान किया जाता था।' चाय खत्म हो चुकी थी। मैंने पूछा- 'आप किधर जायेंगे?'

www.thearyasamaj.org

कहानी– होगा नया विहान

'मेरी चिन्ता मत करो। मैं यहां से मंदिर जाऊँगा। वहाँ शांति मिलेगी। फिर घर चला जाऊँगा।' वह बोले।

मैं भी लड़खड़ाता हुआ-सा चल पड़ा था। बरसों पहले पत्रिका शुरु की थी जो बन्द हो गई थी। दूसरों के प्रकाशनों को चमकाया था और सफलता के कई सोपान चढ़ने के बाद लोग मुझसे पीछा छुड़ा लेते थे। कई लोगों ने रचनायें माँगी और फिर अपने नाम से छपवा लीं। कहानी संग्रह, कविता-संकलन छपवाने के लिये जिस प्रकाशक से संपर्क साधा उसने यही कहा कि प्रकाशन का खर्च मुझे ही देना होगा। सोचते-सोचते एक हरे-भरे पार्क तक पहुँच गया। पार्क के बाहर चाट के कई ठेले खड़े थे। स्त्री, पुरुष, बच्चे हँसते खिलखिलाते हुये चाट खा रहे थे। अंदर जाकर एक बेंच पर बैठ गया। कुछ मोटी महिला सेहत सुधारने के लिये टहल रही थी। खूबसूरत गोल-मटोल बच्चे गेंद खेल रहे थे। पार्क में झाड़ियों के पास प्रेमियों के जोड़े जमे हुये थे। सूर्यास्त का समय था। संध्या-सुंदरी की माँग में लगता था सूर्यदेव ने चुटकी भर सिंदूर भर दिया था जो छिटककर समूचे परिदृश्य को लालिमा से परिपूर्ण कर रहा था। मैं कल्पना करने लगा-उस भारत की जहाँ कोई भी शोषित, पीड़ित, उपेक्षित और अभावग्रस्त नहीं होगा। जहाँ पीड़ा की जगह प्रसन्नता होगी और होगा एक नया विहान जो परास्त कर देगा अंधकार को, असत्य को, अन्याय और अभाव को।

– द्वारा-श्री आर. एस. पाण्डेय,
861, Y-1 ब्लाक, किदवई नगर, कानपुर (उ. प्र.)

www.thearyasamaj.org

विश्व-धर्म-सम्मेलन और युवा संन्यासी –

स्वामी विवेकानन्द

– डॉ. विद्यानन्द ब्रह्मचारी

कहा जाता है कि विधाता का विचित्र विधान नाना प्रकार से संचालित होता रहता है। परमात्मा ने जिस निर्दिष्ट कार्य के लिये जिस व्यक्ति को निर्धारित किया है या भेजा है, वह कार्य उसे करना ही होगा। उससे अलग या भिन्न वह कुछ नहीं कर सकता और तदनुकूल परिस्थितियां भी बनाता रहता है।

इसी परिप्रेक्ष्य में यह उल्लेखनीय है कि आज से 120 वर्ष पूर्व अमेरिका के शिकागो (Chicago) शहर में जो विश्व-धर्म-सम्मेलन का भव्य आयोजन आन-बान-शान और मान से हुआ था, वह क्यों तथा कैसे हुआ था ? इस संबंध में बहुत कम लोग जानते हैं।

सन् 1889 ई. के ग्रीष्म ऋतु में अनायास अमेरिका के एक प्रतिभाशाली और प्रभावशाली विद्वान् मिस्टर चार्ल्स कैरल बोनी के अंतःकरण में धार्मिक भावना का उदय हुआ था। उस भावना में पवित्रता, सहृदयता, सरसता, मानवता और स्वाभाविकता भरी थी। उन के मन में आया कि क्यों न संसार के सभी देशों से धार्मिक प्रतिनिधियों को बुलाकर कुछ ऐसे सम्मेलन आयोजित किये जायँ। जिनमें मानवीय सभ्यता और धार्मिक भावनाओं से जुड़े हुए विषयों पर विस्तृत चर्चा हो सके।

मिस्टर कैरल बोनी एक प्रतिभावान्, धार्मिक विद्वान् और व्यावहारिक महामानव थे। सभी ने एक स्वर से उनकी परिकल्पना का हार्दिक स्वागत किया। तदनुसार 30 अक्टूबर, 1890 ई. को 'वर्ल्डस कांग्रेस एग्जिलरी ऑफ कोलम्बियन एक्सपोजिशन' नामक एक कमेटी का गठन हुआ और मिस्टर चार्ल्स बोनी उसके अध्यक्ष चुने गए। इसकी समितियों की संख्या बीस थी। इन सभाओं में सामाजिक प्रगति, समाचार-पत्र, चिकित्सा व शल्य विज्ञान, नशीले पदार्थों का निषेध, कानून व समाज सुधार, अर्थशास्त्र और धर्म इत्यादि विषयों पर चर्चा हुई। इनमें धर्म-महासभा ही सबसे महत्वपूर्ण थी और इसी ने जनता का ध्यान सर्वाधिक आकृष्ट किया।

इतिहास से पता चलता है कि प्राचीन समय में भारत में यत्र-तत्र धर्मसम्मेलन हुआ करते थे। इस्लाम धर्म में भी इस प्रकार के सम्मेलनों का वर्णन मिलता है। परन्तु विश्व के विभिन्न धर्मावलम्बियों द्वारा एक ही सम्मेलन में एकत्र होकर एक ही मंच से, बिना किसी विवाद के, अपने मत की घोषणा करने का अवसर तथा अधिकार के विषय में इससे पूर्व का उल्लेख कहीं नहीं मिलता है। ऐसी कोई परिकल्पना ही अकल्पनीय थी। जब इस प्रस्ताव को सर्वसम्मति से घोषित किया गया, तो वह मनुष्य की क्षमता से परे ही प्रतीत हुआ।

सर्वसम्मति से विश्व-धर्म-सम्मेलन की तिथि 11 सितम्बर, सोमवार 1893 ई. से 27 सितम्बर, 1893 ई. तक निर्धारित की गयी। सभापति बोनी ही इनमें प्रमुख थे। परन्तु मूल-प्रेरक बोनी के होने

www.thearyasamaj.org

पर भी सारे अधिकार फर्स्टप्रेस बिटेरियन चर्च के धर्मनेता माननीय जॉन हेनरी डा. बैरोज के हाथ में थे। कार्यकारिणी समिति के अध्यक्ष के रूप में उस सभा के समस्त आयोजनों का उत्तरदायित्व उन्होंने ही ग्रहण किया था।

धर्म आयोजकों के मन में यह आशा छिपी हुई थी कि आखिरकार विजय ईसाई-धर्म की ही होगी और महासभा इसी धर्म का विश्वभर में प्रचार करने में सहायक सिद्ध होगी। इसी निश्चय से आम अमेरिकी नर-नारियों ने एक उदार दृष्टिकोण के चलते ही इस कार्य में धन आदि से भरपूर सहायता की थी।

सभी देशों के प्रतिनिधि तो आने ही थे भारत से भी इसी धर्म सम्मेलन में प्रतिनिधि जाना था। दैवयोग से उन्हीं दिनों जब स्वामी विवेकानन्द जी मद्रास में थे तब उनको अमेरिका में सर्वधर्म-सम्मेलन के आयोजन का समाचार मिला। उनका आकर्षक व्यक्तित्व और उनकी धाराप्रवाह अंग्रेजी बोलने की दक्षता को देखकर सब ने उन्हें यह परामर्श दिया कि वे ही अमेरिका जाकर उस 'धर्म महासम्मेलन' में भारत का प्रतिनिधित्व करें। किन्तु अमेरिका जाने के लिये धन और वैसा लिबास कहाँ से आता? तभी संयोग से एक घटना घटी। खेतड़ी के महाराजा ने पुत्र-जन्मोत्सव पर उन्हें घर पर बुलाया। पुत्ररत्न को आशीष देने के उपरान्त उन्होंने जब महाराजा को अमेरिका जाने की बात बतलायी तो वे अत्यन्त हर्षित हुए और उन्होंने तत्काल भव्य गेरूवे रंग की चमकीली रेशमी पोशाक और पगड़ी उन्हें भेंट की। साथ ही समुद्री जहाज का किराया तथा वहां रहने के लिये कुछ मुद्रा भी उन्हें अपनी ओर से दक्षिणा के रूप में प्रदान की। वे तुरन्त उसमें सम्मिलित होने को तैयार हो गए। हिन्दूधर्म का उनसे बड़ा ज्ञानी तथा प्रगल्भ वक्ता और था ही कौन? भक्त मंडली की सहायता से वे इस पवित्र यात्रा पर विश्वधर्म-सम्मेलन शिकागो (अमेरिका) में सम्मिलित होने के लिए 31 मई, 1893 ई. को बम्बई से प्रस्थान कर गए। उनकी यात्रा अमेरिका के इतिहास की अमर घटना है। भारत से विदा होने के पूर्व उन्होंने स्वामी तुरीयानन्द से कहा था, "हरि भाई, धर्म-महासभा इसी (अपनी ओर इंगित कर) के लिए हो रही है। मेरा मन ऐसा ही कह रहा है। शीघ्र ही तुम्हें इसका प्रमाण देखने को मिलेगा।"

जुलाई, 1893 ई. के अन्त में शिकागो पहुँच कर जब उन्हें ज्ञात हुआ कि सम्मेलन 11 सितम्बर में होगा तो उनके सामने समस्या आयी वहाँ रहने और खाने की भी। उनके ये दिन बड़े कष्ट में बीते। पर उनकी संतोषवृत्ति इन सब पर विजयी हुई। दूसरे, सम्मेलन में उनका नाम पंजीकृत कराने की तिथि भी निकल चुकी थी। अन्ततः हार्वर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर राइट ने उनकी सहायता की और प्रतिनिधियों की चयन-समिति से उनकी सिफारिश के साथ अमेरिका में उनके आने-जाने की व्यवस्था भी कर दी। शिकागो में श्रीमती हेल ने उनकी रहने और खाने की समस्या भी हल कर दी। महासम्मेलन के अध्यक्ष डा. बैरोज श्रीमती हेल के मित्र थे। वे स्वामी जी को डॉ. बैरोज से मिलवाने उनके घर ले गयीं। डॉ. बैरोज स्वामी विवेकानन्द के तेजोदीप्त मुखमण्डल को देखते ही उनकी ओर स्वतः आकर्षित हो गये। देखा जाये तो यह सब कार्य परमपिता परमात्मा अपने आप करा रहा था। इसके बाद उन्हें धर्म महासम्मेलन में फिर कोई कठिनाई नहीं हुई।

सोमवार, 11 सितम्बर, 1893 ई. को प्रातः-काल शिकागो के हॉल ऑफ कोलम्बस में धर्म महासम्मेलन का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। इसमें संसार के सभी धर्मों के प्रतिनिधि शामिल हुए।

www.thearyasamaj.org

सभी प्रतिनिधियों में स्वामी विवेकानन्द ही सबसे कम आयु और ख्याति वाले व्यक्ति थे। उस समय उनकी आयु तीस वर्ष की थी। पर प्रभु की लीला देखिये उस समय जितने भी प्रतिनिधि उस धर्म-सम्मेलन में आए थे स्वामी जी को छोड़कर आज उन प्रतिनिधियों का कोई नाम तक नहीं जानता। किन्तु कायस्थ वंश का तेजस्वी वंशधर भारत के नवजागरण की शंखध्वनि करने वाले महापुरुषों में स्वामी विवेकानन्द का नाम आज भी बड़े आदर के साथ 'युवा दिवस' के रूप में पूरे संसार में लिया जाता है।

नियत समय पर धर्म-महासम्मेलन के हाल में आगे-आगे सभापति चार्ल्स बोनी तथा कार्डिनल गिबन्स चल रहे थे। उनके पीछे थी मेले की महिला कार्यकारिणी समिति की अध्यक्षा तथा उपाध्यक्षा (क्रमशः श्रीमती पॉटर पामर वा श्रीमती चार्ल्स सी. हेनरोटिन)। उसके पीछे प्रतिनिधिगण तुमुल हर्षध्वनि के बीच से अग्रसर होकर मंच पर आसीन हुए। उन्हीं में भारत से गये हुए प्रतिनिधिगण तथा स्वामी विवेकानन्द भी वहीं बैठकर सबका ध्यान बरबस ही अपनी ओर आकृष्ट कर रहे थे। उनकी कुर्सी की संख्या इकतीसवीं थी।

अचानक ही घण्टा बजा सभी उठे और मिलकर भगवान् की स्तुति करने लगे। सार्वजनिक प्रार्थना के बाद महासभा की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। महासभा का यह कार्यक्रम सत्रह दिन तक प्रातः तथा सायं दो सत्रों में चलता रहा।

अधिवेशन के प्रथम दिन महासभा के आयोजकों ने प्रतिनिधियों का सादर स्वागत किया। बड़े समारोह के साथ संगीत और भाषणों से सभा का उद्घाटन हुआ। तदुपरान्त एक-एक कर सभा में आए प्रतिनिधियों का परिचय दिया गया।

अपराह्न में युवा संन्यासी स्वामी विवेकानन्द को बुलाया गया। उन्होंने स्वयं ही लिखा है कि "देवी सरस्वती को प्रणाम करके मैं आगे बढ़ा और डॉ. बैरोज ने मेरा परिचय दिया। मेरे गैरिक वस्त्रों के कारण श्रोताओं का ध्यान किंचित् आकृष्ट हुआ था ; अमेरिकावासियों को धन्यवाद तथा और भी दो-एक बातें कहकर मैंने एक छोटा सा व्याख्यान दिया। जब मैंने 'अमेरिकावासी बहनों और भाईयो' (Brothers & Sister of America) कहते हुए सभा को सम्बोधित किया, तो इसके साथ ही दो मिनट तक ऐसी घोर करतल-ध्वनि हुई कि कानों में अँगुली देते ही बनी। तब मैंने बोलना आरम्भ किया'। उन्होंने आगे लिखा "मुझ को ऐसे धर्मावलम्बी होने का गौरव है जिसमें क्षमता तथा विश्वबंधुत्व की शिक्षा है। हम लोग समस्त जगत् में केवल समदर्शन ही नहीं मानते किन्तु समस्त धर्मों को सच्चा भी समझते हैं।"

पहले दिन के व्याख्यान का वर्णन करते हुए श्रीमती एस.के. ब्लाजेट ने कहा था, "1893 ई. के शिकागो धर्मसभा में मैं उपस्थित थी। उस युवक ने जब उठकर कहा, 'मेरे अमेरिकावासी बहनों और भाइयो' तो सात सहस्र नर-नारियों ने खड़े होकर एक ऐसी शक्ति के प्रति सम्मान व्यक्त किया, जिसके बारे में वे कुछ समझ नहीं सके थे। व्याख्यान समाप्त हो जाने पर मैंने देखा कि सैकड़ों महिलाएँ बेंचों के ऊपर से होकर उनके निकट पहुँचने का प्रयास कर रही हैं। तब मैंने मन ही मन कहा, 'बेटा, यदि तुम इस आक्रमण के सामने अपना मस्तिष्क ठीक रख सके, तो मैं समझूँगी कि तुम साक्षात् भगवान् हो।'

www.thearyasamaj.org

डॉ. विद्यानन्द ब्रह्मचारी

दिनांक 12 सितम्बर को नामी समाचार-पत्र 'न्यूयार्क हेराल्ड' ने अपने सम्पादकीय लेख में लिखा था- वे विद्वत्ता के बाहर के विद्वान् हैं।[1]

पुनः महान् विद्वान् डॉ. बेन्जामिन ने मुक्तहृदय से सुवक्ता वेदान्ती युवा संन्यासी स्वामी विवेकानन्द जी के आगाध पांडित्य के बारे में कहा था[2]- "वास्तव में स्वामी जी ऐसे विशाल बुद्धिसम्पन्न हैं, जिनके सम्मुख हमारे विश्व-विद्यालय के बड़े-बड़े प्राध्यापक गण भी शिशु जैसे लगते हैं।"

स्वामी जी भारत की किसी मान्य संस्था द्वारा विश्व-धर्म-सम्मेलन में नहीं भेजे गये थे। सच तो यह है कि स्वामी जी को आधुनिक भारत के युग-प्रवर्तक सिद्ध सन्त, महान् दार्शनिक स्वामी रामकृष्ण परमहंस (जन्मः 1836 महासमाधिः 1886) जी महाराज की समस्त आध्यात्मिक शक्ति और शुभ आशीर्वाद प्राप्त था।

इस महासभा में भारत के नर-शार्दूल स्वामी जी के 6 व्याख्यान हुए थे, 11 सितम्बर, 15, 19, 20, 26 और 27 सितम्बर 17वाँ दिवस (शेषदिन) हुआ था। आध्यात्मिक विभूति स्वामी विवेकानन्द का 27 सितम्बर 1893 ई. को विदाई व्याख्यान हुआ था। उन्होंने अपने निर्मल हृदय से उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा-

"जगत् में सब धर्मों के सम्मेलन की सम्भव-परता आज पूर्णरूप से सिद्ध हो गई। परमेश्वर ने उन लोगों की सहायता की जिन्होंने इसके स्थापन तथा इसकी सिद्धि के निमित्त निःस्वार्थ श्रम और उद्योग किया।

उन महानुभावों को मेरा धन्यवाद है जिनके विशाल हृदय तथा सत्य की प्रीति में यह कल्पना पहले-पहल उत्पन्न हुई और फिर जिन्होंने उसे पूरा कर दिखाया। मैं उन बुद्धिमान् श्रोतागणों को भी धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने मुझ पर अत्यन्त कृपा की है तथा जिन्होंने उन युक्तियों को आदरपूर्वक स्वीकार किया है जिनके द्वारा मत-मतान्तर के झगड़े मिट सकते हैं।

इस धर्म-महामण्डल ने जगत् के लिए कोई घोषणा की है तो वह यह है-उसने यह सिद्ध कर दिखाया कि शुद्धता, पवित्रता तथा दयापरता किसी विशेष सम्प्रदाय की सम्पत्ति नहीं है। अत्यन्त श्रेष्ठ एवं प्रशंसनीय स्त्री-पुरुष प्रत्येक धर्म सम्प्रदाय में हुए हैं।[3]

स्वामी जी ने वैश्विक धर्म जैसे अनेक धार्मिक आध्यात्मिक विषयों पर विलक्षण व्याख्यान दिये। विषय के प्रतिभापूर्ण प्रतिपादन ने स्वामी जी को अमेरिका के लोगों के हृदयासन पर स्थापित कर दिया। उनकी विमल ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी। फैलती भी क्यों न, उन्होंने सारे विश्व को आत्मा का अद्‌भुत संदेश' जो दिया था।

आज स्वामी विवेकानन्द इस धराधाम पर विराजमान नहीं हैं ; पर उनके विचार आज भी संसार के असंख्य मनुष्यों के हृदय में जागृति का दिव्य सन्देश और स्वर्णिम उपदेश भर रहे हैं।

-'रामतीर्थ कुंज', ग्राम. व पो. राँकोडीह,
वाया-कोशी कालेज, खगड़िया, जिला- खगड़िया- 851 205 (बिहार)

---

1. He is learned beyond learning.
2. A man of gigantea intellect indeed, one to whom our greater University professors were as mere children.
3. शिकागो वक्तृता-स्वामी विवेकानन्द, श्रीरामकृष्ण आश्रम, नागपुर, 1946 से उद्धृत।

www.thearyasamaj.org

हर ऋतु में उपयोगी हरड़

–डॉ. हनुमान प्रसाद उत्तम

हरड़ एक ऐसी चीज है, जिसके प्रयोग से कभी नुक्सान नहीं होता। इसकी चर्चा करते हुए एक स्थान पर उल्लेख है – 'नास्ति यस्य गृहे माता, तस्य माता हरीतकी' अर्थात् जिस घर में माता नहीं होती, उस घर में हरड़ माता होती है। माता तो नाखुश हो भी जाती है किन्तु हरड़ कभी भी नाखुश होकर व्यक्ति को नुकसान नहीं पहुंचाती है। हरड़ के उपयोग से मानव आरोग्य होकर स्वस्थ जिंदगी यापन कर सकता है। इसके लगातार सेवन से काया की प्रतिरोधक सामर्थ्य बरकरार रहती है। ग्रन्थों के मुताबिक जब देवराज इन्द्र ने अमृत पान किया, तब उसमें से एक बूंद पृथ्वी पर गिर पड़ी थी, उससे सात तरह की हरड़ पैदा हुई, पर व्यवहार में इसके विशेष दो ही प्रकार पाए जाते हैं।

प्रथम–गुठली बनने से पूर्व जो फल गिर जाते हैं या तोड़कर सुखा लिए जाते हैं उसे छोटी हरड़ या बाल हरड़ कहते हैं। द्वितीय– जो फल पककर बड़े या गुठली वाले हो जाते हैं उन्हें बड़ी हरड़ कहते हैं। दोनों रसायन गुणयुक्त होती हैं। आयुर्वेद में बताए गए छः रसों– मधुर, अम्ल, कटु, लवण, तिक्त और कषाय में से लवण रस को छोड़कर शेष पांचों रस हरड़ में पाए जाते हैं।

शरीर में पाए जाने वाले तीनों दोषों– वात–पित्त–कफ में संतुलन बनाए रखने में इसका विशेष योगदान होता है। वात–पित्त–कफ के असंतुलन की दशा में क्रमशः गुड–घी–सेंधानमक के साथ इस्तेमाल करने से तमाम तरह की व्याधियों में फायदा होता है। इसका सेवन रसायन रूप में प्रत्येक ऋतु में किया जा सकता है। जो पदार्थ वृद्धावस्था के लक्षणों को असमय न पैदा होने दे और व्याधियों को दूर रखे, उसे रसायन कहते हैं। छोटी हरड़ उदर–रोगों में विशेष रूप से उपयोगी होती है और बड़ी हरड़ का उपयोग त्रिफला में तथा ऋतु अनुसार हरड़ का प्रयोग दूसरी वस्तुओं के साथ करने से ज्यादा बेहतर होता है। बड़ी हरड़ का चूर्ण शरद ऋतु में चीनी के साथ, हेमंत ऋतु में सोंठ के चूर्ण के साथ, शिशिर ऋतु में छोटी पिप्पली चूर्ण के साथ, बसंत ऋतु में मधु के साथ, ग्रीष्म ऋतु में गुड़ के साथ और वर्षा ऋतु में सेंधानमक के साथ सममात्रा में मिला कर सेवन करने से रसायन के गुणों का लाभ मिलता है।

रासायनिक विश्लेषण –

इसके फल में टैनिक अम्ल 45 प्रतिशत, गैलिक एसिड ज्यादा तादाद में, पीला रंजक द्रव्य, चुबेलिनिक अम्ल पाए जाते हैं।

गुण–धर्म –

यह जायका में कसैली, खासतौर से पचने पर मधुर और हल्की, रुखी एवं उष्ण है। इसका विशेष असर समस्त काया पर रसायनरूप में पड़ता है। यह सूजन नाशक, दर्दहर, घाव शोधक,

www.thearyasamaj.org

रोपक, नाड़ी-बलदायक, मस्तिष्क-शक्तिवर्धक, आंख-गला आदि को हितकर, अग्निदीपक, हल्की विरेचक, कृमिनाशक, यकृत उत्तेजक, हृदय बलदायक, रक्त-स्थापक, कफनाशक, मूत्रल, चर्म व्याधि नाशक, ज्वर हर है।

औषधीय प्रयोग–

इसके कुछ सुगम और लाभकारी प्रयोग पेश किए जा रहे हैं-

* हरड़ चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, सेंधानमक बराबर तादाद में लेकर चूर्ण तैयार करके रखें। एक-एक चम्मच सवेरे शाम लेने से बदहजमी खत्म होती है।
* स्वप्नदोष की परेशानी को यह नुस्खा हल करता है। आंवला, हरड़, बहेड़ा 50-50 ग्राम, कपूर 30 ग्राम, पुराना गुड़ 150 ग्राम। तीनो दवाइयों को बारीक कूट लें। तत्पश्चात् कपूर तथा गुड़ को मिलाएं। इसकी एक-एक ग्राम की गोली बना लें। अब सबेरे एवं रात में एक गोली जल से लें। इस दवा के लगातार सेवन से स्वप्नदोष ठीक हो जाता है साथ ही मूत्र आधारित व्याधि प्रमेह भी मिटता है।
* एनीमिया यानी खून की कमी होने पर हरड़ का चूर्ण 2 ग्राम दिन में दो बार पानी से लेने से आराम मिलता है।
* 10 ग्राम भृंगराज के स्वरस में 6 ग्राम हरड़ का चूर्ण और 10 ग्राम पुराना गुड़ मिलाकर खाने से जलन और वमन समाप्त होते हैं।
* जामुन की गुठली की मींग, आम की गुठली की मींग तथा भुनी हुई छोटी हरड़ तीनों को समभाग लेकर कूट-छानकर चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को तीन-तीन ग्राम सवेरे-शाम छाछ (मट्ठे) के साथ नियमित रूप से सेवन करने पर दस्त बंद हो जाते हैं। इससे मधुमेह के रोगी को भी लाभ पहुंचता है।
* हरड़ को रात भर पानी में भीगने दें और प्रातः-काल उसी जल से आंखें धोएं। इससे आंखें भी नहीं दुखतीं और ठंडक भी बनी रहती है।
* छोटी हरड़ को बारीक पीसकर मुंह के छालों पर लगाएं। इसे दिन में तीन-चार बार नित्य कुछ दिनों तक लगाते रहें।
* अजवाइन, हरड़ और सोंठ का चूर्ण मट्ठे के साथ सेवन करने से आमवात से होने वाली व्याधियां दूर होती हैं।
* छोटी हरड़ 2-3 प्रतिदिन चूसें। इस हरड़ को न भूनना है, न कूटना है, जैसी पंसारी के यहां से आती है उसी रूप में सेवन करें। हां, धोकर या कपड़े से पोंछकर साफ कर लें। करीब एक घंटे में घुल जाती है। कब्ज दूर करने के लिए अद्भुत प्रभावकारी है।

  नोट – यह खुश्की पैदा करती है, अतः दूध या घी का सेवन आवश्यक है। हरड़ को चूसते रहने से सभी प्रकार के कीड़े नष्ट हो जाते हैं।
* छोटी हरड़ व पुराना गुड़ खाने से हिचकी से आराम मिलता है।

–जन शिक्षण इण्टर कालेज, प्रेमपुर-बड़गांव, कानपुर नगर-208001

www.thearyasamaj.org

वेद में सर्प-विष-चिकित्सा

– डॉ. दीप लता

विष के प्रभाव के निवारण हेतु, प्रतिकार और नष्ट करने हेतु जो उपाय किए जाते हैं उन्हें विष-चिकित्सा कहते हैं। विष शब्द का शाब्दिक अर्थ जहर, हलाहल है। इस शब्द की व्युत्पत्ति "विष्+क" के संयोग से हुई है।[1] अष्टांगहृदय में विष के तीन प्रकार कहे गये हैं। फल-फूल आदि कन्दों में पाया जाने वाला विष स्थावर । सर्प, बिच्छू, मकड़ी आदि की दाढ़ों में रहने वाला विष जंगम विष होता है। ये दोनों विष अकृत्रिम होते हैं इसका तीसरा भेद चर कहलाता है जो विभिन्न ओषधियों से बनाया जाता है वह विष कृत्रिम होता है। यह अपने तीक्ष्ण गुणों के कारण ओज को नष्ट करता है और वात-पित्त प्रधान होने से जीवन को भी नष्ट करता है।[2] विष-चिकित्सा के विषय में कहा गया है कि- विष का प्रभाव होते ही तुरंत वमन (कै) अर्थात् उलटी करानी चाहिए और रोगी के ऊपर शीतल जल डालला चाहिए। इसके साथ ही गाय का घी-शहद मिलाकर चाटने के लिए देना चाहिए। मुलहठी का काढा (क्राथ) और शहद भी देने का विधान किया गया है।[3]

सभी प्रकार के विष के प्रभाव को कम करने के लिए घी अर्थात् गाय के घी के समान लाभकारी कोई ओषधि नहीं है। घी वायु की प्रबलता को नष्ट करता है क्योंकि विष से ग्रसित रोगी को अधिक से अधिक गाय के घी का सेवन कराना चाहिए क्योंकि घी विष के प्रभाव को शान्त करता है।[4]

अथर्ववेद में सोम-पान को विष नाशन का सर्वोत्तम उपाय कहा है। सोमपान करने वाले प्राणी पर विष का प्रभाव नहीं होता है[5]

मन्त्रोच्चारण द्वारा भी विष को कम किया जाता है। जिसे मन्त्र-चिकित्सा कहते हैं। इसको लौकिक भाषा में झाड़-फूंक भी कह सकते हैं। बाण लगने से, फाल से सींग आदि लगने से जो विष शरीर में प्रवेश कर चुका होता है उसे भी मन्त्रोच्चारण द्वारा दूर किया जा सकता है। मंत्र इस प्रकार है-

यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा यावत्सप्त सिन्धवो वितष्ठिरे।
वाचं विषस्य दूषणीं तामितो निरवादिषम्॥[6]

अथर्ववेद में विषनाशक ओषधियों में 'अलाबू'[7] (लौकी, लम्बा कद्दू या मीठी तुम्बी),

1. संस्कृत हिन्दी कोश, पृ. 959
2. अष्टांगहृदय उत्तरस्थान, अध्याय 35, श्लोक 1-10
3. अष्टांगहृदय उत्तरस्थान, अध्याय 35, श्लोक 17-20
4. अष्टांगहृदय उत्तरस्थान, अध्याय 35, श्लोक 69-70
5. अथर्ववेद 4/6/1
6. वही, 4/6/2,5,3,8, 6/90/2
7. अथर्ववेद, 4/10/2, मैत्रायणीसंहिता, 4/2/13.

www.thearyasamaj.org

अवघ्नती,[8] इन्द्राणी,[9] ऋतजात,[10] (मधुला, वच, कुलिंजन), कान्दाविष (कन्द विष), तौदी[11], दर्भ (कुश),[12] बभ्रु (सहस्रपर्णी, शंखपुष्पी)[13], मधुक, मधू,[14] मधुला,[15] घृताची (बड़ी इलायची),[16] विषदूषणी[17], विषदूषषी[18] आदि का उल्लेख मिलता है।

वेद में सर्पदंश के विष का अत्यधिक उल्लेख है। वेद में 18 प्रकार के सर्पों का उल्लेख है, जिनमें कुछ कम विषैले तथा कुछ असह्य विष वाले होते हैं।[19]

अथर्ववेद में साँप के काटने के मुख्य तीन रूप माने हैं- (1) खात- जिसमें साँप के गहरे दाँत लगे हों, (2) अखात- जिसमें साँप के दाँत कम गहरे लगे हों, (3) सक्त- साँप की केवल रगड़ लगी हो।[20] सांप के काटने पर कटे हुए स्थान से चार अंगुल ऊपर किसी चीज से बांधकर गांठ लगानी चाहिए। गाँठ इतनी कसकर लगाई जाए कि विष का प्रभाव शरीर में ऊपर न जाए। इस प्रकार उत्तम, मध्यम और अधम तीनों प्रकार के विष का प्रभाव रोका जा सकता है।[21] वाद्ययन्त्र अर्थात् ढोल, नगाड़ा आदि के तीव्र स्वर से भी सर्प-विष की चिकित्सा की जाती है इससे साँप से कटे व्यक्ति को वेहोशी नहीं आती है और उसे बचा लिया जाता है।[22]

सर्पविष नाशन के लिए बाहरी विष के प्रयोग का भी उपदेश किया है ऐसा करने से बाहरी विष सर्प के विष को नष्ट कर देता है। अथर्ववेदानुसार काटने वाले साँप को मार देना चाहिए। इससे साँप के विष का प्रभाव साँप पर लौट जाता है।[23]

सर्पविष दूर करने के लिए जल-चिकित्सा का भी महत्त्व है। नदी के जल में नहाने, तैरने आदि से भी सर्प-विष बहने से कम हो जाता है। उल्लेख है कि नदी के जल में विष कम करने का गुण होता है। जल-चिकित्सा की दृष्टि से सर्पविष उतारने के लिए योग की कुंजल क्रिया भी विशेष लाभप्रद होती है। सांप से काटे व्यक्ति को अधिक से अधिक 2 से 4 लीटर तक पानी पिलाएं और खड़े होकर मुँह में अंगुली डालकर उससे उल्टी कराएं। पेट का सारा पानी बाहर आने पर विष का प्रभाव कम हो जाएगा।[24] क्योंकि जल में सर्पविष

---

8. ऋग्वेद, 1/191/2.
9. पैप्पलाद संहिता 9/10/9, भावप्रकाश, पृष्ठ-228-230.
10. अथर्ववेद 5/15/1-11.
11. अथर्ववेद, 10/4/22-24.
12. ऋग्वेद, 1/191/3, अथर्ववेद, 19/28,29,30 सूक्त, 6/43/1-3.
13. अथर्ववेद, 6/139/3, भावप्रकाश गुडूच्यादि, 272-273.
14. अथर्ववेद, 7/58/2.
15. अथर्ववेद, 7/56/2, ऋग्वेद, 1/191/10.
16. ऋग्वेद, 1/167/3, अथर्ववेद 10/4/24, कौशिक सूत्र, 8/16.
17. अथर्ववेद, 10/4/24, 8/7/10.
18. अथर्ववेद, 5/13/5-9, सुश्रुतसंहिता, कल्पस्थान, अध्याय 4 और 5.
19. अथर्ववेद, 5/13/1, चरकसंहिता, चिकित्सा-स्थान, अध्याय 23.
20. अथर्ववेद, 5/13/12.
21. वही, 5/13/3.
22. वही, 5/13/4.
23. वही, 10/4/20, 19; 6/12/[illegible].
24. वही, 5/13/10-11.

www.thearyasamaj.org

को कम करने की शक्ति होती है अतः जल में रहने वाले सर्प इसीलिए अधिक विष वाले नहीं होते।

अर्थववेद में सर्पचिकित्सा के सन्दर्भ में अनेक ओषधियों का उल्लेख मिलता है। ताबुव अैर तस्तुव नामक ओषधियों में सर्पविष-नाशक गुण पाए जाते हैं। वही समान गुण कटु तुम्बी (कड़वी लौकी) और तिक्त कोशातकि (कड़वी तोरई) में पाए जाते हैं।[25] भावप्रकाश निघण्टु में कटुतुम्बी को कड़वी, विषनाशक, ठण्डी और हृदय को शक्ति देने वाली कहा गया है।[26] इसको वमनकारक अर्थात् उल्टी कराने में लाभकारी माना है। कटुतुम्बी की बारीक जड़ को गोमूत्र में पीसकर वटी या गोली बनाकर छाया में सुखाकर, उसको गोमूत्र आदि के साथ घिसकर एक हाथ भर लेप करने से सांप का विष नष्ट हो जाता है। सपेरे कटुतुम्बी की वीणा (बीन) अपने पास रखते हैं इसका कारण यह है कि कटुतुम्बी सर्पविषनाशक है और इसके अन्दर से निकलने वाली ध्वनि सर्प को अपने वश में कर लेती है।[27]

दर्भ (कुश या कुशा) शोचि (अग्नि) तरूणक (रोहिष तृण, सुगंधतृण या कृत्तृण), अश्ववार या अश्ववाल (कास नामक तृण), परूषवार (मूंज या मुंज),[28] श्वेत ओषधि (सफेद अर्क या आक को ही श्वेत ओषधि कहते हैं)[29] आक की जड़, आक के फूल, आक का दूध[30] (अरंघुष और पैद्व औषधि को भी सफेद आक के नाम से जाना जाता है) पैद्व अर्थात् सफेद आक की जड़, फूल और रस को सर्वविषनाशन कहा है।[31] इन्द्र ओषधि (ऐन्द्री, इन्द्रवारूणी),[32] कुमारिका ओषधि,[33] भी सर्पविषनाशक होती है। वंध्या कर्कोटकी (बांझ ककोडा, बांझ खेखसा),[34] को कुमारिका और कन्या नाम से भी जाना जाता है। अपराजिता ओषधि (कोयल, विष्णुकान्ता इसके अन्य नाम हैं) यह सर्पविष के साथ-साथ बिच्छू-विष को भी नष्ट करता है।[35] तौदी, घृताची, कन्या ओषधियों को भी सर्पविषनाशक कहा है ये तीनों नाम बड़ी इलायची के समझे जाते हैं।[36] मधुला, मधू, मधुजाता, मधुश्चुत् इन्हें सर्प, बिच्छू एवं मच्छर

---

25. भावप्रकाश, शाकस्थान 58-59.
26. कामरत्न, सर्पविषचिकित्सा, 10.
27. अथर्ववेद, 10/4/2.
28. वही, 10/4/3.
29. चरकसंहिता, चिकित्सास्थान 23/56, सुश्रुत-संहिता, कल्पस्थान 5/18, भावप्रकाश गुडूच्यादि 65-70.
30. अथर्ववेद 10/4/4-5, 6, 8.
31. वही, 10/4/10-12, भावप्रकाश गुडूच्यादि, 196-199.
32. अथर्ववेद, 10/4/14.
33. भावप्रकाश, 291-292; पृष्ठ 268.
34. अथर्ववेद, 10/4/15.
35. वही, 1/4/24, भावप्रकाश कर्पूरादि, 56-57.
36. वही, 7/56/2.

www.thearyasamaj.org

मारने की दवा कहा है।[37] मधु, मधूलिका आदि को यष्टीमधु (मुलहठी) नाम से पुकारा जाता है। अथर्ववेद में बाण के विष को उतारने के लिए मुलहठी का उपयोग होता है।[38] वरणावती (वरना या वरूण) विषनाशक होने के साथ-साथ यह विविध रोगों, ज्वर, राजयक्ष्मा आदि को दूर करने में भी सक्षम है।[39] करम्भ (दही मिले हुए सत्तू को करम्भ कहते हैं) दही के सेवन से विषनाश का वर्णन मिलता है।[40] वच या वचा ओषधि, अपजीका (दीमक) जो वल्मीक (वमी या बांबी) बनाती है।[41] अजशृंगी (मेषशृंगी), अलाबू (लम्बा कद्दू), वृष (वासा) शीपाल (शैवाल) शोचि (कुशा), सदंपुष्पा, सदंपुष्पी (सदापुष्प) सैर्य (अश्ववाल, कास) आदि विभिन्न प्रकार की ओषधियां विष निवारण हेतु उपयोगी बतायी गयी हैं इनके यथाविधि प्रयोग से रोगी को बचा लिया जाता है।

इस प्रकार संक्षेप से लिखा जा सकता है कि वैदिक काल से ही अनेक प्रकार के विष निवारण हेतु वैदिक चिकित्सकों के द्वारा विभिन्न उपाय भिन्न-भिन्न ओषधियों के द्वारा किए जाते थे। वर्तमान काल में भी अनेक स्थानों पर सर्पविष नष्ट करने के लिए वैदिक विधियों का प्रयोग किया जाता है जिससे रोगी शीघ्र ही सर्पविष से मुक्ति पा कर स्वस्थ हो जाता है। इस प्रकार वैदिक विधियां वर्तमान काल में भी उपयोगी सिद्ध होती हैं।

–प्रवक्त्री, एस. वी. एस. डी. महाविद्यालय, भटोली (ऊना), हिमाचल प्रदेश।

---

37. अथर्ववेद, 7/56/1, भावप्रकाश हरी. 138-139, पृष्ठ-42-44.
38. अथर्ववेद, 4/7/1.
39. वही, 4/7/2.
40. वही, 4/7/4.
41. वही, 6/100/2.

www.thearyasamaj.org

सन्त कबीरदास की रचनाओं में पथ्य-अपथ्य

– डॉ. देवी सिंह

कवि केवल विचारक ही नहीं अपितु समाजसुधारक भी होता है। सन्त कबीरदास भी उन्हीं कवियों में से हैं जिन्होंने काव्यभाषा का सदुपयोग मन्तव्य को पाठक तथा श्रोता तक पहुँचाने के लिए किया है। समर्थ कवि जिस प्रकार अपनी कविता के माध्यम से अपने सामाजिक दायित्व का निर्वहण करते हैं, उसी प्रकार कबीरदास ने भी सामाजिक जीवन के प्रत्येक बिन्दु को छूते हुए अपनी काव्य-संरचना द्वारा हिन्दी साहित्य में जो पहचान बनाई है, वह अद्वितीय है। उन्होंने अपने काव्य में जितना महत्त्व आत्मचिन्तन को दिया है, उतना ही सामाजिक-पक्ष पर भी प्रकाश डाला है। उन्होंने भावपक्ष में ब्रह्मसत्ता, आनन्दानुभूति, संवित-विश्रान्ति, स्वयंप्रज्ञता, चित्तदशा इत्यादि विषयों पर दृष्टिपात किया है। सामाजिक पक्ष में जहाँ उन्होंने अनेक प्रकार से समाज सुधार के विषय में कहा वहां सामाजिक ढाँचे के मूलरूप उसके पथ्य-अपथ्य पर विचार क्योंकि किसी भी व्यक्ति के मानसिक-चिन्तन पर उसके भोज्य पदार्थों का भी प्रभाव रहता है। जिसका जैसा खान-पान होगा उसकी बुद्धि भी वैसी ही सत्त्व-रजस्-तमस् गुणरूपा होगी। एतदर्थ प्रकृत शोधपत्र में कबीरसम्मत कुछ पथ्य एवं अपथ्य विचारों पर प्रकाश डाला जा रहा है। यहाँ 'पथ्य' शब्द से तात्पर्य है- स्वास्थ्यप्रद कल्याणकारी पौष्टिक एवं उपयोगी आहार।[1] 'अपथ्य' शब्द का अर्थ है- अयोग्य, अनुचित, घृणित एवं कष्टप्रद भोजन।[2] यहां सन्त कबीर के पथ्यापथ्यसम्बद्ध मन्तव्यों को तीन भागों में विभक्त किया गया है- (1) जिहास्वादन का निराकरण (2) अभक्ष्य भक्ष्य निराकरण (3) मादक पदार्थों का निराकरण। इनके सेवन से व्यक्ति उन्नति की ओर न जाकर नारकीय जीवन के गड्ढे में गिर सकता है।

1. जिह्वास्वादन का निषेध –

कबीर ने इन्द्रियों को अच्छे लगने वाले पदार्थ सेवन का निषेध किया है। उनका कहना कि खट्ठा, मीठा, चटपटा इत्यादि सभी रसों का स्वाद जिह्वा लेती है। जिह्वा के स्वाद में आसक्त मन आदि इन्द्रियों का वश में होना मुश्किल है।[3] जिह्वा की स्वादासक्ति मे पड़कर जो मन को

1. वामन शिवराम 'आप्टे', संस्कृत-हिन्दी कोश, पृ. 570
2. वही, पृ. 56
3. लालचन्द्र दूहन 'जिज्ञासु', कबीर वाणी अमृत सन्देश, पृ. 151

www.thearyasamaj.org

लुभाने वाले भोज्य पदार्थों से बहुत अधिक उदरपूर्ति कर लेता है, उसको साधु नहीं कहा जा सकता।[4] इस सांसारिक मोह-माया में फंस कर मनुष्य पहले तो सांसारिक वस्तुओं का भोग करता रहता है, फिर इन्हीं भोगों के कारण वह एक दिन दुःखी भी हो जाता है, क्योंकि उसे इन सांसारिक विषयों का आस्वादन इतना स्वादिष्ट लगने लग जाता है कि वह इनको छोड़ना नहीं चाहता। परन्तु जब इनसे उसका मन भर जाता है अथवा जब वह इन चंचल इन्द्रियों के वश में आ जाता है तो फिर पश्चात्ताप के अतिरिक्त उसके पास कोई दूसरा मार्ग नहीं होता।

इसी विषय में कबीर जी कहते हैं कि स्वाद के कारण मक्खी गुड़ में फंस कर रह गई, वह अपने हाथ रगड़ती है तथा अपना सिर पटक रही है अर्थात् किसी भी वस्तु का लालच करना बुरी आदत है।[5] वे कहते हैं कि बहुत से मनुष्य घर की जिम्मेदारियों से तंग आकर साधु बन जाते हैं। वास्तव में उनको साधु बनने की प्रक्रिया तथा उसके लिये जिन साधनों का प्रयोग किया जाता है, उनका ज्ञान नहीं होता, क्योंकि वे गृहस्थ जीवन में प्रयोग किये जाने वाले तथा जीभ को स्वादिष्ट लगने वाले अच्छे-अच्छे मसालेदार, खुशबुदार तथा चटपटे व्यंजनों को नहीं भूलते हैं। ऐसे लोगों को कबीर जी ने बहुरूपिये या ढोंगियों की कोटि में रखा है। वे कहते हैं कि मोक्षप्राप्ति के लिये सिर मुंडवाकर साधु तो बन गए परन्तु फिर भी घरों में मिलने वाले मसालेदार शाक-भाजी के लिये पश्चात्ताप कर रहे हैं अर्थात् जो ऐसे आस्वादन का त्याग नहीं करते उनका मन संयम में तो होता नहीं, केवल दिखावे के लिए बिना योग के ही आसन लगाए अपने घुटनों को पीड़ित करते हैं।[6]

जीवन में मानव को प्रारब्ध रूप से जो प्राप्त है, उसी में संतुष्ट रहना चाहिए, क्योंकि अपनी आधी और रूखी-सूखी रोटी ही बहुत अच्छी है। भरपेट भोजन तो शोक-सन्ताप अर्थात् दुःखरूप है।[7] तात्पर्य यह है कि स्वादासक्ति में पड़कर अहंकारवश बहुत से पापकर्म होते रहते हैं। सर्वभोगों का त्याग ही, सब पापों से मुक्त होने का उपाय है। इस संसार में प्रत्येक जीव को अपने से बढ़कर कुछ भी प्रिय नहीं लगता। ऐसी मान्यता भी है कि 'जान है जो जहान है'। जीवन जीने के लिये निश्चितरूपेण भोजन की नितान्त आवश्यकता है। यह समस्या लगभग सभी के समक्ष है, किन्तु सुपाच्य-सात्विक भोजन करने से यह समस्या मिट सकती है और इसमें स्वाद के अभिनय की कोई आवश्यकता नहीं। यह तो सर्वविदित ही है कि प्रत्येक भोज्य-पदार्थ में उसके अपने स्वाद की एक विशेष भूमिका होती है, परन्तु उसमें कोई हानि नहीं अपितु उसके गुण को समझने की यह अच्छी प्राकृतिक-योजना है, क्योंकि स्वाद का होना तो कुछ भी गलत नहीं

---

4. लालचन्द्र दूहन 'जिज्ञासू' कबीर वाणी, अमृत-सन्देश, पृ. 151
5. वही, पृ. 152
6. वही , पृ. 152
7. वही, पृ. 153

www.thearyasamaj.org

प्रत्युत्त स्वाद की आसक्ति का होना दोषपूर्ण अर्थात् पाप में सुलिप्त करने वाला होता है। इसी सन्दर्भ में सामान्य जीव के विषम में निर्गुणब्रह्म से विनती करते हुए कबीर जी कहते हैं कि हे स्वामी! तू मुझको सूखी रोटी ही दे, क्योंकि लालच करके घी में चुपड़ी हुई रोटी मांगने से मैं डरता हूँ कि कहीं मेरी यह रूखी-सूखी रोटी भी न छिन जाए।[8] उदर-पूर्ति के लिये अन्न-जल की आवश्यकता होती है। स्वाद का इसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

कबीर जी कहते हैं कि हे मानव। यदि तू वास्तव में ही उस निर्गुणब्रह्म का साक्षात्कार चाहता है तो जीभ का स्वाद अर्थात् घी-चुपड़ी रोटी का तो त्याग करना ही पड़ेगा।[9] इस बात को यदि हम आज के आधुनिक जीवन के सन्दर्भ में भी समझें तो पता चलता है कि आज-कल शारीरिकश्रम कम हो गया है और मशीनरी-श्रम अधिक। पूर्वसमय में मशीनरी-श्रम के अभाव में मानव को कार्य-सिद्धि में शारीरिक-श्रम भोगाना पड़ता था, लेकिन आज बढ़ती हुई विभिन्न प्रकार की व्याधियाँ इस बात का द्योतक हैं कि मानव को अपने खान-पान पर अंकुश लगाने की आवश्यकता है, क्योंकि पहले तो सारा काम शरीर से ही करना होता था जिसके परिणामस्वरूप मनुष्य का घी इत्यादि खाया हुआ आसानी से पच जाता था, लेकिन आज इसके सब विपरीत होने के कारण शूगर, हार्ट-अटैक, अधरंग इत्यादि बिमारियों का मानव-जीवन के साथ चोली-दामन का साथ हो चुका है। अतः जीवन-कल्याण के लिये जिह्वा की स्वादासक्ति से मुक्त होना अत्यावश्यक है।

2. मांस एवं मद्य का निषेध–

इस जगत् में भोजन मूलतः मांसाहार और शाकाहार इन दो भागों में विभक्त किया जाता है। शाकाहार से अभिप्राय यह है कि जो धरती से उत्पन्न अन्न, शाकादि हैं, उसे शुद्ध रूप से बनाया-खाया जाए। इसका सीधा संबंध प्रकृति की नियमित व्यवस्था से है। शाकाहार सबके लिये लाभदायक होता है। इससे जीवन में शुद्ध सात्विक वृत्ति, शक्ति एवं तेज की वृद्धि होती है। जिससे तन और मन दोनों स्वस्थ रहते हैं। इससे प्राणियों के सीधे सरल चित्त एवं उदार-स्वभाव का निर्माण भी होता है तथा सबसे मुख्य बात यह है कि अध्यात्म-साधना के लिये शाकाहार सबसे उत्तम खाद्य होता है। इसके ठीक विपरीत मांसाहार है जो प्राणियों का वध करके प्राप्त होता है, जिसकी प्राप्ति में अनेक प्राणियों की हत्या का पाप लगता है। यदि कोई व्यक्ति मांस-भक्षण करता है तो उसके तन-मन में हिंसात्मक प्रवृत्ति एवं शक्ति पैदा होगी, जिससे उसका स्वभाव (प्रकृति) चिड़चिड़ा, उग्र एवं हिंसात्मक होगा। मांसाहार की तरह ही जीवन में मद्य (मदिरा या शराब) का सेवन जहर के समान होता है जो शनैःशनैः गुण, विद्या, बुद्धि एवं बल को समाप्त कर देता है। अतः मांस एवं मदिरा का सेवन मानव को कभी नहीं करना चाहिए।

---

8. लालचन्द्र दूहन 'जिज्ञासू' कबीर वाणी, अमृत-सन्देश, पृ. 153
9. वही

www.thearyasamaj.org

डॉ. देवी सिंह

सन्त कबीर जी ने मांसाहारी मानव की संगति न करने के लिए अपने शब्दों में उपदेश देते हुए कहा है कि मांस-भक्षी व्यक्ति साक्षात् राक्षस-शरीरधारी ही होता है अर्थात् उसे राक्षस ही समझो। उसकी संगति कदापि नहीं करनी चाहिए, क्योंकि जीवन-कल्याण के लिये भक्ति-साधना आवश्यक है। मांस खाने वाले सभी जन मूढ-अछूत हैं और मद्य-पान करने वाले सभी अधर्म-प्रवृत्ति वाले होते हैं। इसलिए कुल-परम्परा में प्रचलित इस प्रकार की मांस-मदिरा के खान-पान की कुबुद्धि का परित्याग करके जो उस निर्गुण राम का स्मरण करता है वही व्यक्ति श्रेष्ठ कहलाता है।[10] मनुष्य का जैसा खान-पान होगा उसके चित्त की वृत्तियाँ भी उसी प्रकार कार्य करने लगेंगी। यदि चिड़ियाघर में जाकर देखें तो पता चलता है कि हाथी कितना बड़ा जानवर है परन्तु वह शान्त स्वभाव का होता है। शेर और बाघ बहुत चंचल स्वभाव वाले होते हैं। इन दोंनो प्रकार के प्राणियों के जीवन में उनके आहार का भी बहुत अधिक महत्त्व है।

हाथी शाकाहारी है इसलिए उसका स्वभाव शान्त है परन्तु शेर-बाघ मांसाहारी प्राणी हैं, इसलिए इनका स्वभाव चंचल है। कबीर कहते हैं कि सभी मांस एक जैसे होते हैं,चाहे वह गाय, मुर्गी, हिरण इत्यादि किसी भी जीव का क्यों न हो। उसे अपनी आखों से देखते हुए जो मनुष्य खाता है, वह घोर नरक को प्राप्त होता है। मांस तो कुत्ते का भोजन है, फिर मानव-शरीर ग्रहण करके भी इसका भोग क्यों किया जाए ? ऐसा ज्ञान रखते हुए भी जो मांस-भक्षण करता है, वह अन्त में दुःख रूपी नरक में प्रवेश करता है।[11] जो जीव की हत्या करके हिंसा-कर्म करते हैं, प्रत्यक्षतः उनके सिर पर पाप बढ़ता जाता है और फिर अज्ञानवश उस पापकर्म की निवृत्ति के लिए वेद-पुराण की कथा सुनते हैं, परन्तु इस प्रकार के यत्न करने से कोई स्वर्ग नहीं गया। जो तिल-भर मछली खाकर उसका प्रायश्चित करने के लिए यदि करोड़ों गायों का दान करे और काशी में भी मरे, तब भी वह अज्ञानी पाप-कर्म से मुक्त नहीं होगा।[12]

मनुस्मृतिकार ने कहा है कि जीव-हत्या का पाप आठ प्रकार के व्यक्तियों को लगता है-- मारने का आदेश देने वाला, काट-काट कर टुकडे करने वाला, मारने वाला, खरीदने वाला, बेचने वाला, पकाने वाला, परोसने वाला, खाने वाला। इस प्रकार जीव-हिंसा में ये आठ भागीदार हैं।[13] जो मांस को नहीं खाता वह लोक में प्रसिद्धि को प्राप्त होता है तथा उसे कोई भी व्याधि पीड़ित नहीं करती।[14] कबीर जी कहते हैं कि सबसे बड़ी खुशी और सादे भाव का खाना तो खिचड़ी है, जिसमें बस थोड़ा-सा नमक पड़ा है। पराये जीव का मांस

---

10. लालचन्द्र दूहन 'जिज्ञासू' कबीर वाणी, अमृत-सन्देश, पृ. 156-157
11. वही, पृ. 156-157.
12. वही, पृ. 159
13. मनु., अध्याय 5, 51
14. वही, 5, 50

www.thearyasamaj.org

खाकर अपना गला कौन कटवाए ?[15] वे कहते हैं कि जीवों पर दया करना, उनकी रक्षा करना ही धर्म है, परन्तु यदि इसके विपरीत किसी भी धर्म-शास्त्र में जीव-हिंसा की बात हो तो उसे न मानना ही नीति-संगत है।[16]

3. भांग-तम्बाकू-धतूरे का निषेध –

संसार में नशे की लत एक ऐसी बिमारी है जो जीवन को अस्त-व्यस्त कर देती है। व्यक्ति नशे की हालत में अपनी सामान्य-स्थिति से गिर कर अपने होश खो देता है। उचित और अनुचित का भी उसे ध्यान नहीं रहता। आज के युग में जो व्यक्ति, इस व्यसन में पड़े हुए हैं वे इसके चंगुल से छूटने को तैयार नहीं। यह बड़े दुःख की बात है। कबीर जी कहते हैं कि पाप-वासना रूपी काल ने इस कलियुग में भांग-तंबाकू और अफीम ये नशीले पदार्थ भेज दिए। इनका सेवन करने वालों को ज्ञान-ध्यान की तो सुध रहती नहीं, बस वे इन्हीं की सीमा में ही रहना पसन्द करते हैं।[17] वे कहते हैं कि भांग मनुष्य की बुद्धि तथा बल को खा जाती है, अफीम खाने वाला अज्ञानी-मूर्ख हो जाता है और शराब के सेवन से मनुष्य पशु अर्थात् भ्रष्ट हो जाता है।[18] चिलम-तम्बाकू पीने वालों की स्थिति बहुत हीन होती है इससे काम-काज में हानि, बल का घटना, तृष्णा का बढ़ना। तीखे धूएं से सूक्ष्म जीवों का मरना इत्यादि। इस प्रकार धूम्रपान से जब इतनी अधिक हिंसा होती है तो परमेश्वर इसके सेवन की आज्ञा कैसे दे सकता है अर्थात् नहीं। अतः जिस व्यसन से वातावरण दूषित होता है, जो सभी तरह से हानिकारक है, वह प्रभु-भक्ति का साधन नहीं बन सकता।[19]

हरि-भक्तों के हाथ में हुक्का शोभा नहीं देता अर्थात् उनका किसी भी नशीले पदार्थ से कोई सम्बन्ध नहीं होता। कबीर जी कहते हैं कि जो लोग बीड़ी-सिगरेट इत्यादि कोई धूम्रपान करते हैं, उनका संग त्याग देना चाहिये।[20] सभी व्यसनों को छोड़कर अर्थात् भांग, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट,शराब को छोड़कर जब निर्गुण राम का भक्तिरूपी नशा ग्रहण किया जाता है, तब सब अज्ञान दूर हो जाता है और भक्ति-सुख के अतिरिक्ति कुछ नहीं सुहाता। जगत् के सभी स्वाद फीके लगते हैं।[21] अन्तर्यामी परमात्मा राम का प्रेमरूपी प्याला भक्तिभाव से जब हृदय से लगा लिया जाता है तो रोम-रोम में राम रमण करते हैं। उसके पश्चात् किसी अन्य नशे की आवश्यकता नहीं रहती। भाव यह है कि नित्य, चेतन अविनाशी परमात्मा की प्रेम-भक्ति से ही कृतार्थ जब मानव हो जाता है तो इसके सामने कोई नशा नहीं ठहरता। अतः सभी व्यसनों को त्यागकर सद्गुरु के ज्ञानोपदेश का आचरण करना चाहिए।

---

15. कबीर वाणी, पृ. 163
16. वही, पृ. 164
17. वही, पृ. 167
18. वही, पृ. 167
19. वही, पृ. 168
20. वही, पृ. 170-171
21. वही, पृ. 172

www.thearyasamaj.org

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि निर्गुण विचारधारा के सन्त कबीरदास ने अपने सदुपदेशों के द्वारा मानव-जाति के कल्याणार्थ यही समझाने का प्रत्यत्न किया है कि जिह्वास्वादन के चक्र में फंस कर मनुष्य प्रभु-भक्ति से अतिदूर चला जाता है क्योंकि खट्ठा, मीठा, तीखा, चटपटा, इत्यादि सभी रसों का स्वाद जिह्वा लेती है। जिसके कारण हमारी इन्द्रियों में चंचलता आने से उनका वश में होना कठिन हो जाता है। मानव की बुद्धि में सात्विक विचारधारा न रह कर राजसिक और तामसिक विचारधारा अपना प्रभुत्व बना लेती है। जिससे अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन विषयों में फंस कर प्राणी परमतत्त्व के सद्-ज्ञान से अलग हो जाता है। अत: मन को लुभाने वाले भोज्य-पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए और जिह्वा के स्वाद को छोड़कर पौष्टिक तथा सात्विक भोजन खाना चाहिए। शोधपत्र के शीर्षक में 'पथ्य' और 'अपथ्य' शब्द प्रयोग करने का यही उद्‌देश्य है कि कबीर जी ने 'पथ्य' अर्थात् स्वास्थ्यप्रद, कल्याणकारी, पौष्टिक एवं उपयोगी आहार का ही प्रयोग करने का उपदेश दिया है। 'अपथ्य' अर्थात् अयोग्य, घृणित एवं अनुचित भोज्यपदार्थों का सर्वथा त्याग करने को कहा है। उन्होंने मांस खाने वाले व्यक्ति को राक्षस के समान कहा है, क्योंकि मांस खाने वाले मनुष्य में तामसिक वृत्ति पनपेगी, जिससे उसका मन प्रभु-भक्ति में नहीं लगेगा और वह अपने कैवल्य की ओर अग्रसर नहीं हो सकेगा।

इसके साथ-साथ उन्होंने धूम्रपान को भी एक बहुत बड़ा दुर्व्यसन बताया है, क्योंकि नशोन्मत्त व्यक्तियों के बहुत से बिगड़े हुए रूप सामान्यतया देखने को मिलते हैं। उनकी इस स्थिति को देखकर उन पर तरस भी आता है और क्रोध भी, क्योंकि वे स्वयं तो दु:खी होते ही हैं औरों को भी परेशान करते हैं। मान-मर्यादा को नष्ट करने वाला यह नशा एक सामाजिक अपवाद है और मानवता के लिए एक अभिशाप है। हमारे सन्तों ने जिस समाज की कल्पना करके अपने उपदेशों को मानव-जीवन के कल्याण के लिए प्रदान किया था, वही समाज आज भौतिकवाद अर्थात् सांसारिक मोह-माया की चकाचौंध दलदल में इतना धंस चुका है कि इसे वहां से निकालने के लिए फिर से कबीरदास जी जैसे सन्तों के उपदेशों को अपने जीवन में धारण करने की आवश्यकता है। तभी हम एक सभ्य-समाज की पुनर्स्थापना कर सकते हैं।

-संस्कृत प्रवक्ता, राजकीय कन्या महाविद्यालय, सै. 42, चण्डीगढ़।

www.thearyasamaj.org

संस्कृत-साहित्य में सद्वृत्त

– डॉ. त्रिलोचन सिंह बिन्द्रा

किसी भी देश का साहित्य तत्कालीन समाज के लिए दर्पण के समान ही होता है तथा भविष्य के लिए भी जनकल्याणकारी एवं सामाजिक परिवर्तन का कारण हुआ करता है। इस बात को सभी एकमत से स्वीकार करते हैं कि किसी देश का साहित्य ही तत्-तत्कालीन समाज या देश के उत्थान-पतन का कारण होता है। अतः भारतीय ऋषि-मुनियों ने यही सोचकर ऐसे सत्-साहित्य को स्थायी रूप से आर्यावर्त या भारतवर्ष को प्रदान किया जिसके कारण भारत में जन्म लेकर अपना जीवन सफल बनाने के लिए देवता भी लालायित रहे, उसका कारण था उज्ज्वल चरित्र। क्योंकि भारतीय समाज के लिए ऋषियों और मुनियों ने तथा उत्तरवर्ती कवियों ने जिस साहित्य को धरोहर के रूप में भारत को प्रदान किया उसमें अच्छे चरित्र पर काफी बल दिया गया। उनका कहना था– **चरित्रतः शोभते पुमान्** – अर्थात् चरित्र से ही व्यक्ति की पहचान होती है। चरित्र के विषय में तो यहाँ तक कहा गया है कि व्यक्ति को अपने चरित्र की सर्वदा रक्षा करनी चाहिए। यदि कोई चरित्रहीन है तो उसको देवता भी पवित्र नहीं कर सकते। यही कारण है कि भारत के प्राचीन से प्राचीन साहित्य से लेकर आधुनिक साहित्य तक सत्चरित्र के विषय में बहुत कुछ लिखा मिलता है। चारित्रिक दृष्टि से भारत सभी देशों का सिरमोर रहा है। भारत देश अन्य देशों को चरित्र की शिक्षा प्रदान करता रहा है। इसलिए कहा भी है कि –

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

अतः वैदिक साहित्य से लेकर सम्पूर्ण लौकिक संस्कृत-साहित्य सद्वृत्त की महिमा से ओतःप्रोत दिखाई देता है। वेद, उपनिषद्, पुराण, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र तथा अन्य काव्य-नाटक आदि सभी ग्रंथों में सद्वृत्त के अनेक प्रसंग देखे जा सकते हैं। इस विषय में जब वैदिक-साहित्य की ओर दृष्टिपात करें तो वहाँ समष्टिरूप से इस विषय में प्रार्थना की गई है कि– 'हम कानों से शुभ वाणी सुनें, आंखों से शुभ बातों को ही देखें। समस्त लोकों और पशुओं का कल्याण हो॥'[1] भारतीय ऋषियों की विशेषता रही है कि उन्होंने व्यक्तिगत रूप से अच्छी वस्तुओं की प्राप्ति की कामना नहीं की। अपितु समष्टिरूप से जन-जन के कल्याण के लिए इस प्रकार की प्रार्थना की है कि इस धरातल पर रहने वाले सभी सुखी रहें,

1. यजुर्वेद, 25.21 तथा 36.22.

www.thearyasamaj.org

नीरोग रहें। सभी अपने जीवन में अच्छी-अच्छी बातों का अनुभव करें या सुखदायक वस्तुओं को देखें। कोई भी प्राणी जीवन में दुःखी न हो।

इसी प्रसंग में तैत्तिरीय उपनिषद् में लिखा है कि -'सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो, स्वाध्याय में कभी ढील न दो। माता, पिता एवम् आचार्य को देव मानो॥[2]

त्याग और तपस्या को सच्चरित्र में मुख्य कारण माना गया है। इसीलिए उपनिषद् कहती है कि-इस विश्व में जो कुछ भी है, वह सभी ईश्वर का है। अतः उसका त्यागभाव से भोग करो। किसी के भी धन का लोभ न करो। ये वाक्य सद्वृत्त की ही महिमा का सन्देश दे रहे हैं।[3]

वैदिक साहित्य ही नहीं लौकिक साहित्य में भी इस प्रकार के अनेक प्रसंग देखे जा सकते हैं- वाल्मीकि रामायण[4] में ऐसे अनेक उदाहरणों को देखा जा सकता है जैसे- रावण द्वारा अपहरण के बाद आकाशमार्ग से सीता द्वारा नीचे फैंके गए आभूषणों को जब श्रीराम अपने छोटे भाई लक्ष्मण को उन आभूषणों को पहचानने के लिए कहते हैं तब उत्तर में श्री लक्ष्मण जी कहते हैं कि मैं सीता जी के केयूर और कुण्डलों को तो नहीं जानता, परन्तु प्रतिदिन चरणों की वंदना के कारण नूपुरों को ही पहचानता हूं। इससे श्री लक्ष्मण की चारित्रिक विशेषता ही झलकती है। इससे स्पष्ट है कि प्राचीन परम्परा में दूर की बात तो छोड़ो, भाभी के मुख को देखना भी चरित्रहीनता समझा जाता था। सुन्दरकाण्ड[5] में कहा गया है कि जिसमें धैर्य, दूरदृष्टि, स्थिरमति और दृढ़-दक्षता है, वह किसी कार्य में परेशान नहीं होता और सफलता को प्राप्त करता है।'

इसी प्रकार क्रोधी व्यक्ति के सम्बन्ध में कहा गया है कि वह कौन-सा पाप नहीं करता, वह तो अपने गुरु तक की हत्या कर देता है। वह कठोर वाणी बोलता है। उसे क्या कहना चाहिए और क्या नहीं कहना चाहिए, इसका ज्ञान उसको नहीं रहता। अतः ऐसा व्यक्ति चरित्रवान् नहीं हो सकता। किसी भी व्यक्ति की सच्चरित्रता में उसके मन, बुद्धि तथा इन्द्रियां कारण हैं। क्योंकि कहा भी है मन ही मनुष्य के बन्धन और मोक्ष का कारण है।

श्रीमद्भगवद्गीता[6] वैसे तो सम्पूर्ण ही सच्चरित्रमय है, पर यहां पर केवल दो उदाहरणों को ही देखते हैं-

'इन्द्रियों को वश में करके ही व्यक्ति प्रज्ञावान् हो सकते हैं, पर यह उच्च चरित्र के बिना संभव

---

2. तैत्तिरीय उपनिषद्, 1.11.1.
3. ईशोपनिषद्, 1.
4. नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
   नूपरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवंदनात्॥
   - वारा. किष्किन्धाकाण्ड, 6.22.23.
5. वाल्मीकि रामायण, सुन्दरकाण्ड, 1.201, 2.39, 41, इत्यादि।
6. श्रीमद्भगवद्गीता, 2.61 तथा 2.63.

www.thearyasamaj.org

नहीं है। क्रोध से संमोह और संमोह से बुद्धिनाश तथा बुद्धिनाश होने पर सर्वनाश हो जाता है।' अत: क्रोधमुक्त हुए बिना चरित्र का निर्माण नहीं हो सकता है।

कालिदास की रचना कुमारसंभव[7] में देखा जा सकता है –

'नीच व्यक्ति के शरणागत होने पर, उसे भी अपनाने में ही महानता है। सभी प्रकार के विकारों और पथभ्रष्ट होने के साधनों के उपस्थित रहने पर भी, जिनके मन विकृत नहीं होते हैं, वे ही व्यक्ति धीर हैं। अपशब्दों के प्रयोग की बात तो दूर रही, उनके श्रवणमात्र से ही पाप की प्राप्ति हो जाती है।' सामाजिक चरित्र-निर्माण का इससे बढ़ कर क्या उदाहरण हो सकता है?

मेघदूत[8] में तो कवि ने इस दिशा में जिस भावना का परिचय दिया है उससे कौन परिचित नहीं। वे लिखते हैं कि –

'गुणवान् व्यक्तियों से याचना का निष्फल होना श्रेष्ठ है, पर नीच व्यक्ति से याचना करना ठीक नहीं है। मित्रों के कार्यों को अपना समझ महान् व्यक्ति शिथिल व्यवहार नहीं करते। नीच व्यक्ति भी मित्र के पहले किए उपकार को स्मरण करके मुख नहीं मोड़ते हैं और फिर महान् व्यक्तियों का तो कहना ही क्या?'

शकुन्तला को देखकर जब राजा का मन उसकी ओर आकृष्ट होता है तो वह कहता है कि निश्चित ही यह कन्या क्षत्रिय के द्वारा ग्रहण करने अर्थात् विवाह करने योग्य है। अन्यथा मेरा आर्यमन, सच्चरित्र मन इसकी ओर कैसे आकृष्ट हो सकता है। यह सच्चिरत्रता का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। जहां एक भारतीय राजा इस प्रकार सोच सकता है। अभिज्ञानशाकुन्तला के पात्र भी चारित्रिक दृष्टि से अपना महत्त्व रखते हैं उसी के कारण शकुन्तला नाटक को सभी नाटकों में उत्कृष्ट माना गया है। चरित्र की दृष्टि से तनिक देखें राजा दुष्यन्त जब आश्रम में प्रवेश करता है तो कहता है कि किसी भी ऋषि के आश्रम में विनीतवेष अर्थात् साधारण वेष में प्रवेश किया जाता है। अत: आभूषण उतार कर सारथी को दे देता है– **विनीतवेषप्रवेश्यानि तपोवनानि।**[9]

महाकवि भारवि के 'किरातार्जुनीयम्'[10] महाकाव्य में एक स्थान पर दुर्योधन के चरित्र का दिग्दर्शन कराते हुए कहा गया है –

'मानवता के उच्च धरातल पर पहुँचने के लिए दुर्योधन काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, मात्सर्य आदि शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर रात दिन, आलस्य रहित होकर कार्य-विभाजन करके अनीति से प्राप्त राज्य को अब नीति द्वारा पुरुषार्थ से फैला रहा है। उसी काव्य में द्रौपदी युधिष्ठिर से कहती है– आप के सदृश महान् व्यक्ति के प्रति मुझ जैसी नारी के द्वारा कुछ कहना आक्षेप की तरह है, पर फिर भी नारी-सुलभ हृदय की चाह मुझे कुछ कहने की प्रेरणा दे रही है॥'

---

7. कुमारसंभव, 1.12, 8.55, 5.83.
8. मेघदूत, पूर्वमेघ।
9. अभिज्ञानशाकुन्तल, प्रथमाङ्क।
10. किरातार्जुनीयम्।

www.thearyasamaj.org

महाकवि भवभूति के 'उत्तररामचरितम्'[11] में उज्ज्वल चरित्र के विधान को देखा जा सकता है–

श्रीरामचन्द्र जी कहते हैं कि– समाज की भलाई के लिए मैं स्नेह, दया, मित्रता की बात तो दूर की है, जानकी तक को भी त्याग सकता हूँ॥'

संस्कृत-साहित्य के नीतिकारों[12] के नीतिश्लोक भी सम्पूर्ण सच्चरित्रता के ही उदाहरण हैं, उनमें से कुछ को देखा जा सकता है– जो दूसरे की पत्नी को माता के समान, दूसरे के धन को मिट्टी के ढेले के समान तथा सभी प्राणियों को अपने समान देखता है, वही व्यक्ति सच्चरित्र तथा विद्वान् है। संसार के सभी आभूषण नाशवान् हैं, केवल वाणी ही सच्चा आभूषण है। अत: सत्य और मधुर वाणी बोलें। जैसे एक सुगन्धित पुष्प से सारा वन सुगन्धित हो जाता है, वैसे एक ही सुपुत्र से वंश उज्ज्वल हो जाता है। अर्थात् चरित्रवान् पुत्र ही सुपुत्र है।' अन्त में बाणभट्ट की कादम्बरी से शुकनासोपदेश[13] को देखा जा सकता है। इसमें चन्द्रापीड़ के राज्याभिषेक के बाद वृद्ध विद्वान् शुकनास के द्वारा इस प्रकार उपदेश दिया गया है–

'यह अनार्या लक्ष्मी सब की अपरिचिता है, सुरक्षित रखने पर भी भाग जाती है तथा इसके लिए कोई गुण, कोई धर्म, कोई योग्यता, कोई भी उदात्त चरित्र अर्थ नहीं रखता। अत: ऐसा यत्न करो कि साधु, विद्वद्जन तुम्हारा उपहास न करें। मित्रगण तुम्हें उपालम्भ न दें और कोई भी व्यक्ति तुम्हारा तिरस्कार न करे।' ऐसा सच्चरित्र आदर्श और नम्रता बड़ों की संगति से ही निर्मित हो सकते हैं। इस प्रकार सद्वृत्त से भरपूर भारतीय संस्कृत-साहित्य विश्व के साहित्य में सर्वोत्कृष्ट स्थान रखता है।

– साधु आश्रम, होश्यारपुर।

---

11. उत्तररामचरितम्, 1.10, 1.12.
12. चाणक्यनीति, भर्तृहरि नीतिशतक।
13. कादम्बरी, शुकनासोपोदेश।

www.thearyasamaj.org

इन्दुबाली के कथा-साहित्य का मूल्यांकन

– सुश्री अनीता गोयल

डॉ. इन्दुबाली का कथा-साहित्य जीवन संस्कृति का कथा-साहित्य है। उपभोक्तावादी मूल्यों का सूक्ष्म चित्रण इन्दुबाली की कथा को अन्य लेखकों से अलग करता है। मानवता की जयगाथा विविधताओं से जुड़कर ऐसे अन्तः-करण को जन्म देती है, जिसका सीधा सरोकार जीवन-जगत् से जुड़ जाता है। इन्दुबाली की कहानियाँ उदारवादी मूल्यों की कहानियां हैं। उन्होंने सदैव किस्सागोई से परहेज किया है, यथार्थवाद का ढोंग न रचकर यथार्थवादी कहानियाँ लिखी हैं।

स्त्री के सतीत्व और स्वतंत्र अस्तित्व के विषय पर लिखी कहानी मुक्ता 'बुद्धिजीवी' वर्ग के लिए आकर्षण से परिपूर्ण है। इसमें घटना से अधिक शिल्प और विचारणा है। वैयक्तिक सजगता के मूल प्रश्न पर केन्द्रित यह कथा व्यक्ति-मन के उस दुर्बल अंश के प्रति पाठक की अतिरिक्त सहानुभूति जागृत करती है, जहाँ विथिका अकेलेपन की चाहना रखने पर बेवश है। पर अकेलेपन की व्यर्थता को भी सार्थक मानती हुई अन्तर्विरोधों से घिरी दिखाई गई है। उसकी असहाय मनःस्थिति का सूक्ष्म अन्वेषण एवं विश्लेषण ही कथाकार को अभीष्ट है। एक शून्य-सा उसके भीतर ही भीतर पनपने लगता है जो उसे टूटन की प्रक्रिया से लेकर बिखेरता हुआ अन्त में विचारणा द्वारा जोड़ता है अथवा वह अपने विलखते हुए अस्तित्व का संरक्षण कैसे कर पाती। विपिन का काला धंधा उसके मन में बोझ है, अन्तरात्मा की चीख है। तभी तो वह अतृप्ता है। उसके ही माध्यम से लेखिका ने नारी-मन की कोमलता, अवशता, व्यावहारिक संतुष्टि, चाहना, घुटन, कुंठा और नारीत्व के मान-अपमान के मौलिक एवं शाश्वत प्रश्नों को उभारा है। धन, दैहिकतृप्ति उसके रोते मन को पूरने में असमर्थ है। तभी वह मानसिक तृप्ति के लिए, स्वतंत्र अस्तित्व के लिए मार्ग पर अग्रसर होकर विपिन को त्याग विचारों की दुल्हन बनी।[1]

'मानो, न मानो' कहानी संग्रह की कहानियाँ इन्दुबाली की समकालीन मान्यताओं को रेखांकित करती हैं तथा कहानी के प्रति उनकी पहुँच को उम्दा भी बनाती हैं। वे कहती हैं, 'कहानी मेरे लिए मात्र कहानी है जो हार्दिक मानसिक-मंथन की प्रतिक्रियास्वरूप पैदा होती है। मन से निकल दूसरे मन को स्पर्श करती है। यह वैसा ही प्राकृतिक नैसर्गिक सुख है जैसा कि नवजात शिशु के जन्म की गंध, जो अपने कोमल स्पर्श से सारे वातावरण को खुशियों से भर देती है। प्रकृति का कण-कण खिल उठता है। बस यही मेरा सुख है और मेरे लेखन का सत्य भी है।[2]

1. डॉ. मनमोहन सहगल एवं हुकुमचन्द राजपाल (सं.) इन्दुबाली और उनका रचनासंसार, पृ.325-326.

2. इन्दुबाली 'एक सोचती हुई औरत' (कहानी संग्रह), कहानी 'तराजू', पृ.26.

www.thearyasamaj.org

इन्दुबाली ने अपने कहानीसंग्रह 'एक सोचती हुई औरत' में आज के उपभोक्तावादी समाज की स्थिति को श्रावणी और आस्था के माध्यम से उजागर किया है। इस कहानी संग्रह के अन्तर्गत कहानी 'तराजू' में श्रावणी और आस्था दोनों सहेली हैं, दोनों साथ-साथ पढ़ीं और एम.बी.ए. करने के बाद दोनों काफी दूर हो गयी थीं। श्रावणी ने दिल्ली की एक मल्टीनेशनल कम्पनी में नौकरी कर ली थी और आस्था ने माता-पिता की इच्छा से शादी कर ली थी। श्रावणी जब तक पढ़ाई कर रही थी माता-पिता और भाई के साथ घर रहती थी, लेकिन नौकरी लगते ही वह माँ-बाप के जेलरूपी बन्धन से छुटकारा पा अलग किराए के मकान में रहने लगी।

''जीवन के ये सच आस्था को हैरान करते और वह बार-बार श्रावणी से फोन पर बात करती समझाती। श्रावणी की लिविंग इन रिलेशनशिप को अपनाने की बात उसे बहुत तड़पा गई, चौंकने के साथ-साथ वह अन्दर तक हिल गई। यह जानकर तो वह और भी हैरान हुई कि वह एक-साथ दो व्यक्तियों के साथ संबंध बनाए हुए है। एक दिल्ली में और एक कलकत्ते में। श्रावणी हर बात साफ शब्दों में आस्था को बता देती थी। वह बिना शादी के दोनों के साथ रहती है। नौकरी में जब दिल्ली होती है तो प्रत्यूष के साथ और कंपनी द्वारा दौरे पर भेजे जाने पर अनुभव के साथ। देह का प्रयोग वह खुले मन से करती है।'' लेखिका ने इस कहानी के माध्यम से आज के बाजारवादी और उपभोक्तावादी मूल्य को स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

स्वाधीनता और समानता के मूल्य आज सारी मानव-जाति को आन्दोलित कर रहे हों, तब कोई कारण नहीं कि भारतीय नारी उनसे पूरी तरह अछूती एवं अप्रभावित रहे। तेजी से बदलते परिवेश के बीच हिन्दुस्तानी स्त्री के लिए आज न तो यह संभव है कि नए जमाने की हवा अपने पास फटकने ही न दे और न ही यह कि सदियों पुरानी गलत मान्यताओं एवं जर्जर आदर्शों के ढोल को चिपकाए भाववादी आत्मविमुग्धता की उसी दुनिया में खोयी रहे। आज बदलाव के अंधड़ ने पुरुष को यह महसूस करने के लिए विवश कर दिया है कि स्त्रियां भी उन्हीं की तरह हाड़-मांस की बनी हैं, उनकी भी अपनी संवेदनाएं और भावनाएं हैं। इसलिए उनके साथ भी उसी तरह का व्यवहार अपेक्षित है, जैसा पुरुष स्वयं अपने साथ चाहता है। किन्तु विडम्बना यह है कि सैद्धान्तिक स्तर पर वह जिस तथ्य को मान्य करता है व्यावहारिक धरातल पर या तो वह उसका पालन नहीं करता अथवा नहीं करना चाहता। ऐसी स्थिति में यदि नारी स्वाधीनता, समानता एवं उसकी अस्मिता की प्रतिष्ठा की आवाज उठाई जाती है तो आश्चर्य की बात नहीं।[3]

इसी प्रकार 'निर्णय की शक्ति' और 'स्वीकृति' शीर्षक कहानी बदलते मूल्यों और संस्कारों की कहानियां कही जा सकती हैं। भौतिकयुग की जरूरतें इतनी बढ़ गई हैं कि सब कुछ जैसे बदल गया है। लेखिका के शब्दों में, 'जीवन आज सामान्य नहीं रहा है। दृष्टि, सोच, मान्यताएँ सब बदल गई हैं। शादी, प्रेम, बच्चे सब

3. डॉ. मनमोहन सहगल एवं हुकुमचन्द राजपाल (सं.) इन्दुबाली और उनका रचनासंसार, पृ. 207.

www.thearyasamaj.org

के सन्दर्भ बदल गए हैं। अपने आप को बदलना और निर्णय लेना सचमुच कितना दु:खदाई होता है।' आज नारी एक शक्तिरूपा नारी के रूप में हमारे सामने आयी है। इसी प्रकार इन्दुबाली अपने रचनासंसार में समकालीन संदर्भों में मध्यवर्गीय अभिजात और साधारण नारी के विभिन्न रूपों को अपनी कहानियों के माध्यम से विश्लेषित करती हैं। बाढ़ शीर्षक कहानी में कहानी की नायिका विद्युत अन्त में पति का घर छोड़ने के निर्णय पर मुक्त हो जाती है। वह अपने भाई से कहती है, 'भैया, आखिरी बार थोड़े पैसे देना। मैं अपने जीवन का नया इतिहास लिखना चाहती हूँ। कोख की नई परिभाषा लिखना चाहती हूँ, ताकि कलियुग के बाद आए इस पांचवें युग को नया रूप, नए मूल्य, नए संस्कार, नई अस्मिता और निराला व्यक्तित्व दे सकूँ ताकि फिर कोई नारी यूं नंगी न हो। मुझे अब किसी प्रकार के सहारे की विवशता नहीं है। तुम्हारी भी नहीं है। संकल्प हो गया तो हो गया। कौन रोक सकता है, संकल्पों की बाढ़ को, भूचाल को, ज्वालामुखी को, शायद कोई नहीं।'[4]

इन्दुबाली का उपन्यास 'बांसुरिया बज उठी' प्रणय-संबंधों का नवीन आयाम उद्घाटित करता है। प्रेम में भावना एवं त्याग के स्थान पर वासना एवं स्वार्थ की पशु-वृत्ति का प्रतीक है नवल। वह नुपुर को भावुकता में बहकाकर बम्बई ले जाता है और वहां अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए उसका दुरुपयोग करता है।[5]

इन्दुबाली की कहानी संग्रह 'एक सोचती हुई औरत' में, कहानी 'दो नन्हें पंख' में नायिका पूर्वा और उसके प्रति उसके पिता के स्वार्थी प्रेम को दिखाया गया है।

उपभोक्तावादी युग में पैसा ही लगभग सब कुछ होता है और इस कहानी में इन्दुबाली ने पिता का प्यार पूर्वा के प्रति दिखाया है, लेकिन उसके मूल में पैसा ही है। इसी तरह उनके कहानी संग्रह 'नहीं, माँ नहीं तथा अन्य श्रेष्ठ कहानियों में 'मेरी तीन मौतें' कहानी में नायिका नलिनी की शादी उसके माँ-बाप करोड़पति सुमंगल से कर देते हैं।[6] नलिनी की शादी सुमंगल से करने के पीछे भी उसके माँ-बाप का लालच यही है कि उनके पैसे की बचत और समय पड़ने पर लड़के-पक्ष से आर्थिक सहायता का लालच। इस प्रकार कहानी में आधुनिकता और भोगवादी मूल्य को देखा जा सकता है।

इस प्रकार इन्दुबाली के सम्पूर्ण साहित्य में आज का उपभोक्तावादी मूल्य देखा जा सकता है। कहीं सास द्वारा बहु की प्रताड़ना दहेज के लिए तो कहीं पिता द्वारा पुत्री के नाम पर शोक और कहीं पति द्वारा पत्नी की पैसे के लिए प्रताड़ना। यही उनकी कहानियों में सम्पूर्णत: देखा जा सकता है।

-शोधार्थी, हिन्दी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़।

---

4. डॉ. इन्दुबाली (सं.) 'साहित्यिक यात्रा और विश्लेषण', पृ. 234.
5. मनमोहन सहगल एवं हुकुमचन्द राजपाल (सं.), पृ. 111.
6. इन्दुबाली, नहीं, मां नहीं तथा अन्य श्रेष्ठ कहानियां, कहानी मेरी तीन मौतें, पृ. 147-148.

www.thearyasamaj.org

श्रीमद्भागवतपुराण में धर्म

– श्री मनीष कौशल

पुराणों को उत्तरवर्ती साहित्य का मणिमय मुकुट माना जाता है। पुराण समस्त विद्याओं के अक्षय कोष हैं। पुराण प्राचीनकाल से ही अपनी अक्षुण्णता को बनाये हुए हैं। वैदिक-धर्म को लोकप्रिय बनाने का श्रेय पुराणों को ही प्राप्त है। पुराण भारतीय जीवन की परम्परा एवं साँस्कृतिक महत्त्व को सुरक्षित रखे हुए हैं। वर्तमान युग में भी धर्म की रक्षा और भक्ति के विकास का जो दर्शन हो रहा है, उसका श्रेय पुराणों की ही देन है। पुराणों की महत्ता का वायुपुराण[1] के इस कथन से ज्ञान हो जाता है कि जो ब्राह्मण सारे वेद-वेदाङ्गों एवं उपनिषदों का ज्ञाता है, वह तब तक विचक्षण नहीं कहा जा सकता, जब तक वह पुराणों का ज्ञाता न हो जाये।

अष्टादश पुराणों में वैष्णव-पुराण श्रीमद्भागवतपुराण का अपना विशिष्ट एवं अप्रतिम स्थान है। यह ज्ञान, कर्म तथा उपासना का अद्वितीय ग्रन्थ है। यह पुराण वेद और उपनिषदों का सार ही है।[2] इस पुराण का समस्त कलेवर भगवत्-तत्त्व को आत्मसात् किये हुए है। हजारों अश्वमेध और सैकड़ों वाजपेय यज्ञ इस शास्त्र की कथा का सोलहवाँ अंश भी नहीं हो सकते।[3] श्रीमद्भागवतपुराण में मनुष्य-जीवन का मुख्य लक्ष्य 'मोक्ष' माना गया है।[4] किन्तु मनुष्य-जीवन के इस परम लक्ष्य को तभी प्राप्त किया जा सकता है, जब मनुष्य शास्त्र अनुसार अर्थ और काम का उपभोग करता हुआ धर्म के मार्ग पर चले। इसीलिए सभी शास्त्रों में धर्म को बहुत महत्त्व दिया गया है। चाणक्य ने भी कहा है कि- सुखस्य मूलं धर्मः। इसीलिए धर्म की सरिता भागवतपुराण में भी विशुद्ध एवं सरल रूप से निःसृत हुई है। अतः मानव के सर्वाङ्गीण अभ्युदय के बीज धर्म के सम्बन्ध में विचार करने से पूर्व धर्म के मौलिक स्वरूप के सम्बन्ध में विचार करना अत्यन्त आवश्यक है।

धर्म शब्द की व्युत्पत्ति तीन प्रकार से की जा सकती है–

1. ध्रियते लोकोऽनेनेति धर्मः (जिससे लोक धारण किया जाए)
2. धरति धारयति वा लोकं इति धर्मः (जो लोक को धारण करे)
3. ध्रियते यः स धर्मः (जो दूसरों के द्वारा धारण किया जाए)

महर्षि कणाद ने धर्म से उत्पन्न होने वाले फल पर दृष्टि रखते हुए कहा है- "जिससे इस लोक में उन्नति और परलोक में कल्याण या मोक्ष की प्राप्ति हो, वह धर्म है।"[5]

1. वायुपुराण, 1.199.
2. वेदोपनिषदां साराज्जाता भागवती कथा।
   –भागवतपुराण, माहात्म्य, 2.67.
3. तदेव, माहात्म्य, 3.30.
4. तदेव, 4.22.35.
5. वैशेषिकसूत्र, 1.1.2.

www.thearyasamaj.org

महर्षि जैमिनी ने धर्म का लक्षण देते हुए लिखा है- वेद में लिखे अनुसार कर्म करना धर्म है और उसमें न लिखे हुए कर्म को न करना भी धर्म है।[6] महाभारत में धर्म का लक्षण बताया है-

धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः।[7]

महर्षि कपिल ने मनुष्य की उन्नति और अवनति को धर्म और अधर्म का फल बताया है।[8] भागवतपुराण का कथन है कि वेदों ने जिन कर्मों का विधान किया है, वे धर्म हैं और जिनका निषेध किया है, वे अधर्म हैं।[9] वस्तुतः धर्म की और भी बहुत-सी परिभाषाएँ प्राप्त होती हैं, किन्तु निष्कर्ष रूप से यही कहा जा सकता है कि "जो समस्त लोकों को धारण करता है, वही धर्म है।"[10]

श्रीमद्‌भागवतपुराण का धर्म सर्वथा सत्यपरक होने के कारण एक ऐसा आदर्श धर्म है, जिसका पालन परिवार के सभी उदात्त चरित्रवान् प्राणियों द्वारा किया जाता है। इस पुराण के सत्य-परक धर्म का आश्रय एवं प्राण लोक-मङ्गल है। हमारे यहाँ अवतारवाद का प्रथम उद्‌देश्य धर्म की रक्षा माना गया है। भागवत में कहा गया है कि जब-2 संसार में धर्म का ह्रास और पाप की वृद्धि होती है, तब-2 सर्वशक्तिमान् भगवान् श्री हरि अवतार ग्रहण करते हैं।[11] भागवत-पुराण में बहुत विस्तार से धर्म का महत्त्व बताया गया है। इस में कहा गया है कि जहां अधर्म हो, वहां मनुष्य को ठहरना भी नहीं चाहिए।[12]

वस्तुतः संसार में प्रणियों को जो भी सुख और दुःख प्राप्त हो रहा है, उसके मूल कारण धर्म और अधर्म ही है। क्योंकि मनुष्य को अपने किये शुभ तथा अशुभ कर्मों का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। भागवतपुराण में इसी तथ्य को प्रतिपादित करते हुए कहा गया है कि इस लोक में जो मनुष्य जिस प्रकार का और जितना धर्म या अधर्म करता है वह इस लोक अथवा परलोक में उसका उतना और वैसा ही फल भोगता है।[13]

भागवतपुराण[14] में धर्म को भगवान् से ही उत्पन्न माना गया है। वस्तुतः मनुष्य द्वारा धर्म करते समय उसकी भावना के अनुसार ही फल प्राप्त होता है। भागवतपुराण का कथन है कि- यदि मनुष्य मन, वाणी, शरीर और बुद्धि से धर्म का आचरण करे, तो उसे स्वर्गादि शोकरहित लोकों की प्राप्ति होती है। यदि उसका निष्काम भाव हो तब तो वही धर्म उसे अनन्त मोक्ष पद पर पहुँचा देता है।[15] इसलिए मनुष्य का यह परम कर्त्तव्य है कि वह चाहे निमित्त कारण से अथवा निष्कामभाव से धर्म का आचरण अवश्य करे, क्योंकि जो मनुष्य धर्म का आचरण करता है, उसे विद्या, दान, तप और सत्य स्वतः प्राप्त हो जाते हैं, क्योंकि यह चारों धर्म के चार पाद माने गए हैं।[16]

---

6. जैमिनीसूत्र, पू. मी., 1.1.2.
7. महाभारत।
8. सांख्यकारिका, 44.
9. भागवतपुराण, 6.1.40.
10. धरति लोकान् ध्रियते पुण्यात्मभिरिति।
    शब्दकल्पद्रुम, भाग-2, पृ. 783.
11. यदा यदेह धर्मस्य क्षयो वृद्धिश्च पाप्मनः।
    तदा तु भगवानीश आत्मानं सृजते हरिः॥
    -भागवतपुराण, 9. 24. 56.
12. तदेव, 10. 44. 9.
13. तदेव, 6. 1. 45.
14. तदेव, 3. 16. 18.
15. तदेव, 4. 14. 15.
16. तदेव, 3. 12. 41.

www.thearyasamaj.org

भागवतपुराण में ही लिखा गया है कि सत्य, दया, तपस्या, शौच, तितिक्षा, उचित-अनुचित का विचार, मन का संयम, इन्द्रियों का संयम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय, सरलता, सन्तोष, समदर्शी, महात्माओं की सेवा, सांसारिक भोगों से निवृत्ति, अभिमानपूर्ण प्रयत्नों का फल उल्टा ही होता है- ऐसा विचार, मौन, आत्म-चिन्तन, प्राणियों को अन्न आदि का यथायोग्य विभाजन, मनुष्यों में अपने आत्मा तथा इष्टदेव का भाव, सन्तों के परम आश्रय भगवान् श्रीकृष्ण के नाम-गुण, लीला आदि का श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, उनकी सेवा, पूजा और नमस्कार, उनके प्रति दास्य, सख्य और आत्म-समर्पण-यह आचरण सभी मनुष्यों का परम धर्म हैं।[17] इन धर्मों का अवलम्बन कर मनुष्य कभी विघ्नों से पीड़ित नहीं होता। इसके अतिरिक्त भी भागवतपुराण में अनेक धर्मों के दर्शन होते हैं। धर्म के इन विविध स्वरूपों में मानवधर्म, वर्णधर्म, स्त्रीधर्म, यतिधर्म, गृहस्थों के लिए मोक्षधर्म आदि का विशेष रूप से वर्णन हुआ है। चारों आश्रमों के धर्म का वर्णन करते हुए कहा गया है-

शान्ति और अहिंसा संन्यासी का प्रमुख धर्म है। तप और ईश्वर-चिन्तन वानप्रस्थी का, प्राणियों की रक्षा और यज्ञ गृहस्थ का और गुरु की सेवा ब्रह्मचारी का प्रमुख धर्म है।[18]

भागवतपुराण में केवल प्रजा को ही नहीं, अपितु राजा को भी धर्म के मार्ग पर चलने का उपदेश दिया गया है। इसीलिए अधर्मी राजा वेन को मुनियों ने कहा- हे राजन् ! प्रजा का कल्याण-रूप धर्म आपके कारण नष्ट नहीं होना चाहिए। धर्म के नष्ट होने से राजा भी ऐश्वर्य से च्युत हो जाता है।[19]

इसलिए किसी भी मनुष्य को धर्म से विमुख नहीं होना चाहिए, क्योंकि मनुष्य जिनके लिए धर्म से हट कर अधर्म के मार्ग पर चलता है, वही भाई-बन्धु एक न एक दिन उसका त्याग कर देते हैं। अर्थात् जो अपने धर्म से विमुख है- वह अपना लौकिक स्वार्थ भी नहीं जानता। जिनके लिए वह अधर्म करता है, वह तो उसे छोड़ ही देंगे, उसे कभी सन्तोष का अनुभव नहीं होगा और वह अपने पापों के कारण घोर नरक में जायेगा।[20]

वस्तुतः श्रीमद्भागवतपुराण में वर्णित धर्म आज के समाज के लिए विशेषरूप से अनुकरणीय तथा उपयोगी है। अतः मनुष्य को इसमें वर्णित धर्म से शिक्षा ग्रहण कर धर्म के फल तथा मनुष्यजीवन के मुख्य लक्ष्य 'मोक्ष' को प्राप्त करना चाहिए। कहा भी है कि- धर्म का फल है मोक्ष। उसकी सार्थकता अर्थ-प्राप्ति में नहीं है। अर्थ केवल धर्म के लिये है। भोग विलास उसका फल नहीं माना गया है।[21]

-वि. वि. बी. आई. एस. (पं. वि.), साधु आश्रम, होशियारपुर।

---

17. भागवतपुराण, 7.11.8-12.
18. तदेव, 11. 18. 42.
19. तदेव, 4. 14. 16.
20. तदेव, 10. 49. 24.
21. तदेव, 1. 2. 9.

www.thearyasamaj.org

डी. ए. वी. कॉलेज मैनेजिंग कमेटी के प्रधान आर्यरत्न श्री पूनम सूरी जी का संस्थान में आगमन

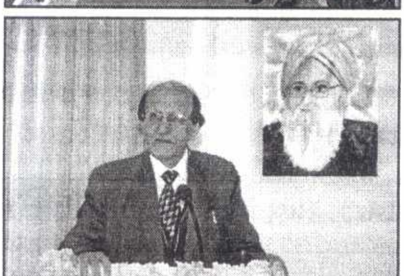

होशियारपुर – शुक्रवार, 13 दिसम्बर, 2013 को वी. वी. आर. आई. होशियारपुर तथा डी. ए. वी. कॉलेज मैनेजिंग कमेटी, चित्रगुप्त रोड, देहली के प्रधान श्री पूनम सूरी जी साधु आश्रम, होशियारपुर में पधारे। आप जम्मू में 251 कुण्डों में सम्पन्न होने वाले यज्ञ की पूर्णाहुति के लिए जाते हुए थोड़ी देर के लिए ही संस्थान में रुके और पुन: विभिन्न स्थानों से आये आर्यसमाज के प्रतिनिधियों, कालेजों एवं पब्लिक स्कूलों के प्रिंसिपलों तथा प्राध्यापकों के सहित जम्मू चले गए। संस्थान में उस समय उपस्थित सभी व्यक्तियों द्वारा सम्मान करने के बाद आपके साथ आये हुए प्रिंसिपल ककड़िया जी ने आपके स्वागत में कुछ शब्द कहे। उसके बाद प्रिं. हंसराज गंधार जी ने आज के युग में संस्थान में किये जाने वाले कार्य की प्रासंगिकता बताते हुए इस कार्य को और बढ़ाने के लिए श्री प्रधान जी से सहयोग के लिए प्रार्थना करते हुए उनकी कार्यक्षमता की प्रशंसा की। तदनन्तर श्री सूरी जी ने अपने संक्षिप्त भाषण में संस्थान की विशेषता बताते हुए इसको और भी कारगर रूप से कार्य करने के लिए अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि–संस्थान जहां वैदिक विषयों को लेकर वैदिक तथा लौकिक संस्कृत के ग्रंथों का एवं संस्कृत, हिन्दी तथा अंग्रेजी की पत्रिकाओं के द्वारा संस्कृत तथा संस्कृति के प्रचार में लगा हुआ है, यह एक प्रशंसनीय कार्य है। यहाँ से प्रकाशित ग्रंथों को न केवल अपने देश में ही मान्यता प्राप्त है अपितु विदेशी विद्वान् भी उनको एक स्थायी सम्पत्ति के रूप में मानते हैं यह अपनी दिशा में एक प्रशंसनीय कार्य है किन्तु जिस लक्ष्य से श्री धनीराम भल्ला जी ने साधु आश्रम बनवाया था उस उद्देश्य को भी ध्यान में रखते हुए यहाँ पर आर्यसमाज का कार्य भी आगे बढ़ाना चाहिए तथा संस्थान को ऐसे विद्वान् भी तैयार करने चाहिएं जो देश-विदेशों में जाकर संस्कृत तथा आर्यसंस्कृति का प्रचार और प्रसार करें। इस कार्य के लिए यहाँ पर समय-समय पर विद्वानों को बुलाकर उनके प्रवचनों से समाजिक कार्य में भी प्रगति करनी चाहिए। इस दिशा में आपने यहाँ पर आर्यसमाज की स्थापना की। आपने यह भी कहा कि अगर संस्थान समय-समय पर आर्यसमाज से सम्बन्धित विशेष विद्वान् एवं महान् व्यक्तियों को आमन्त्रित कर उनसे विशेष प्रवचन करवाता है तो मैनेजिंग कमेटी इस दिशा में संस्थान को आर्थिक रूप से कभी भी कमी नहीं आने देगी। आपने यह भी परामर्श दिया कि आज का पाठक कम समय में अधिक से अधिक जानने की इच्छा करता है। अत: संस्थान को छोटी-छोटी शिक्षाप्रद कहानियों या बुकलेट के रूप में समाजोपयोगी साहित्य को भी छापना चाहिए। ऐसे साहित्य को डी. ए. वी. मैनेजिंग कमेटी अपने स्कूलों तथा कालेजों के बच्चों को भी खरीद कर दिलवा सकती है। इस बात की उपस्थित श्रोताओं द्वारा प्रशंसा की गई तथा संचालक सहित सभी ने इस कार्य को करने का आश्वासन दिया।

www.thearyasamaj.org

संस्थान-समाचार

दान –

प्रिन्सिपल एच. आर. गन्धार,
सैक्टर 39 बी,
चण्डीगढ़। 1,000/-

वार्षिक सदस्य से शुल्क-प्राप्ति –

डॉ. नरिन्द्र के. डोगरा,
पंजाबी यूनिवर्सिटी कैम्पस,
पटियाला। 500/-

हवन-यज्ञ –

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के कार्य दिवस का शुभारम्भ प्रतिसप्ताह के प्रथम दिन सत्संग-मन्दिर में हवन-यज्ञ से हुआ। दिसम्बर 2013 के द्वितीय रविवार को संस्थान के सत्संग-मन्दिर में परम पूज्य स्वामी सत्यानन्द जी महाराज के द्वारा चलाई गई परम्परानुसार उनके भक्तों के द्वारा अमृतवाणी का पाठ किया गया।

शोक-समाचार –

संस्थान के प्राध्यापक तथा सह-सम्पादक डॉ. देवराज शर्मा के जमाता श्री अनिल शर्मा का दिनांक 1-12-2013 को चण्डीगढ़ में हृदयगति रुकने से देहान्त हो गया।

शोकसंतप्त परिवार के प्रति संस्थान के कर्मिष्ठवर्ग की ओर से हार्दिक समवेदना प्रकट की जाती है। परमपिता परमात्मा दिवंगत आत्मा को शान्ति एवं सद्गति प्रदान करें तथा उनके शोकाकुल परिवार को वियोग सहने की शक्ति प्रदान करें।

www.thearyasamaj.org

विविध समाचार

गीता-जयन्ती –

होशियारपुर – 13 दिसम्बर, शुक्रवार को भारत-संस्कृत-अभियानम् के तत्त्वावधान में विद्यामन्दिर सीनियर माडल स्कूल, शिमला पहाड़ी, होशियारपुर में श्रीमद्भगवद्गीता जयन्ती के उपलक्ष्य में प्रिंसिपल जगतावली सूद स्मारक भगवद्गीता व्याख्यान माला का आयोजन किया गया। जिसमें गुरु रविदास आयुर्वेद विश्वविद्यालय, होशियारपुर के कुलपति प्रो. (डॉ.) ओम प्रकाश उपाध्याय ने अध्यक्षता की। इस व्याख्यानमाला के अन्तर्गत रामकृष्ण मिशन, चण्डीगढ़ के पूज्य स्वामी रामरूपानन्द जी महाराज ने श्रीमद्भगवद्गीता एवं स्वामी विवेकानन्द विषय पर अपना व्याख्यान प्रस्तुत किया।

इस अवसर पर वर्तमान में होशियारपुर के मूल निवासी इंग्लैण्ड से श्री उमेशचन्द्र जी विशेष रूप से उपस्थित थे,जिन्होंने बताया कि इंग्लैंण्ड के संसद भवन में भी 18 दिसम्बर को गीता-जयन्ती मनाई जाएगी।

चीन में बौद्ध मठ की खोज –

चीन के शांशी प्रान्त में 1400 साल पुराना एक बौद्ध-मठ मिला है। यह बौद्ध-मठ तांगजी-मंदिर परिसर का एक हिस्सा है जो ताईयुआन शहर के निकट एक पहाड़ पर स्थित है।

इंस्टीट्यूट आफ आर्किलोजी आफ चाइनीज अकैडमी आफ सोशल साइंसिज के अनुसार इस मठ का निर्माण 556 ई. छि राजवंश (550-557 ई.) के शासन में किया गया था। जो बौद्ध-धर्म के विकास का काल था।

www.thearyasamaj.org

विश्वज्योति

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान,
डाकघरः साधु आश्रम, होश्यारपुर-146 021 (पंजाब)

नीतिशास्त्र-विशेषाङ्क, अप्रैल-मई तथा जून-जुलाई 2014

आदरणीय विद्वद्वर्य/ विदुषी !.......

बड़े हर्ष के साथ लिखा जा रहा है कि आपका यह संस्थान उत्तरभारत की उन संस्थाओं में से एक है, जो हिन्दी तथा संस्कृत के प्रचार एवं प्रसार में पूर्णतः समर्पित है। इसी उद्देश्य से संस्थान जनसामान्य की रुचि बढ़ाने तथा हिन्दी के लेखक, कवि तथा नाटककारों को प्रोत्साहित करने के लिए उनके द्वारा समय-समय पर भेजे गए साहित्य को पत्रिका के माध्यम से प्रकाशित करता आ रहा है। इसके लिए संस्थान मासिक हिन्दी पत्रिका विश्वज्योति का प्रकाशन गत 62 वर्षों से करता आ रहा है, जिसमें मान्य विद्वान् एवं विदुषी लेखक अपने लेख भेजकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार में अपना योगदान प्रदान करते आ रहे हैं। विश्वज्योति यद्यपि मासिक पत्रिका है, तथापि स्थायी साहित्य देना आगामी पीढ़ी के लिए एक सम्मान होता है। इस दृष्टि से किसी विशेष विषय को लेकर विश्वज्योति के वर्ष में दो विशेषाङ्क (अप्रैल-मई तथा जून-जुलाई) प्रकाशित किए जाते हैं, जिसके माध्यम से लेखक स्थायी-साहित्य के रूप में लेखों द्वारा अपने विचार प्रकट करते हैं, जो साहित्य के लिए अमूल्य निधि होती है। इस वर्ष **नीतिशास्त्र विषय** को लेकर ये अंक प्रकाशित किए जा रहे हैं।

विशेष – आपसे निवेदन है कि आप नीतिशास्त्र से संबंधित किसी भी विषय पर अपना लेख भेजने की कृपा करेंगे। पत्रिका में पृष्ठसंख्या निश्चित होती है। इसको ध्यान में रखते हुए कृपया लेख अधिक से अधिक 5 पृष्ठ तक ही भेजें जिससे पत्रिका में स्थान देने में कठिनाई न हो। साथ ही लेखक अपने लेख की मौलिकता स्वयं प्रमाणित करके ही भेजें। लेख फरवरी 2014 के अन्तिम सप्ताह तक संचालक के कार्यालय में पहुँचने से सुविधा रहेगी।

आप के लेख की प्रतीक्षा में धन्यवाद सहित,

भवदीय विनीत

इन्द्रदत्त उनियाल
संचालक तथा सम्पादक

www.thearyasamaj.org

नीतिशास्त्र-विशेषाङ्क, अप्रैल-मई तथा जून-जुलाई 2014

विशेष – सुविधा के लिए कुछ-एक इससे सम्बन्धित शीर्षक प्रस्तुत हैं। किन्तु आप शीर्षक चुनने में स्वतन्त्र हैं।

1. नीतिशास्त्र की परम्परा
2. वैदिक साहित्य में नीति
3. रामायण में नीति
4. महाभारत में नीति
5. पुराणों में नीति
6. श्रीकृष्ण की नीति
7. विदुरनीति
8. शुक्राचार्य की नीति
9. रावण का नीतिगत उपदेश
10. भगवान् बुद्ध के नीतिवचन
11. भगवान् महावीर के नीतिवचन
12. गुरु नानकदेव के नीतिपरक वचन
13. सन्त कबीर के नीतिपरक वचन
14. गुरु रविदास के नीति वचन
15. श्रीरामचरितमानस में नीतिगत उपदेश
16. धर्म और नीति
17. राजधर्म और नीति
18. स्मृतियों में नीति
19. व्यावहारिक नीति
20. सदाचार और नीति
21. नैतिक शिक्षा तथा नीति
22. भीष्म पितामह के नीति वचन
23. कौटिल्य की नीति
24. मुद्राराक्षस में नीति
25. शिशुपालवध में नीति
26. किरातार्जुनीय में नीति
27. भर्तृहरि के नीतिवचन
28. नीतिशास्त्र तथा पंचतन्त्र
29. नीतिशास्त्र और हितोपदेश
30. श्रीमद्भगवद्गीता और नीति
31. छत्रपति शिवाजी की नीति
32. नीतिग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय

www.thearyasamaj.org

संस्थान के जीर्णोद्धार के निमित्त धन की अपील

उत्तरभारत में वैदिक तथा लौकिक संस्कृतसाहित्य एवं संस्कृत और संस्कृति के प्रचार तथा प्रसार में सतत प्रयत्नशील विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान से लगभग सभी परिचित हैं। यह संस्थान लाहौर में डी. ए. वी. कॉलेज के रिसर्च विभाग के कैम्पस में स्थित था। 1947 में भारतविभाजन के बाद लाहौर से विस्थापित होकर साधु आश्रम, होशियारपुर में पुनः स्थापित हुआ। पश्चिमोत्तर भारत में वैदिक-साहित्य के रचनात्मक कार्य को करने वाला यह एकमात्र संस्थान है। हिन्दी के प्रचार और प्रसार में यह सतत प्रयत्नशील है। यहाँ संस्कृत के छात्रों के लिए छात्रावास की व्यवस्था है, जिसमें सभी प्रकार की सुविधाएं प्राप्त हैं। प्रतिसप्ताह वैदिक मंत्रों से यज्ञ करने की प्रथा आज भी संस्थान में है। इस संस्थान को किसी प्रकार की राजकीय सहायता प्राप्त नहीं है। केवल सदस्यता-शुल्क एवं दानी पुरुषों द्वारा समय-समय पर प्रदत्त धन से ही इसका व्ययभार चलता है। इस प्रकार के स्रोतों से प्राप्त होने वाला धन आज के इस मंहगाई के युग में संस्थान में कार्यरत कर्मचारियों के वेतन के लिए भी पर्याप्त नहीं होता। धन के अभाव के कारण संस्थान में नवनिर्माण तो रुका हुआ ही है। इसके अतिरिक्त 1947 से भी पूर्व के बने हुए इसके पुराने भवन भी इतने जीर्ण हो गए हैं कि वह किसी भी समय धीरे-धीरे गिर सकते हैं। अन्दर के सभी कमरों की स्थिति भी दयनीय है। संस्थान के पास इतना धन नहीं है कि उनकी मुरम्मत की जा सके। अतः दानी सज्जनों से निवेदन है कि वे आश्रम की जीर्ण-शीर्ण इमारतों, अन्दर की सड़कों इत्यादि या अन्य पुराने भवनों की मुरम्मत हेतु यथाशक्ति धन की सहायता प्रदान कर अनुगृहीत करेंगे। जिससे यहां के छात्रावास, सत्संग-भवन आदि की मुरम्मत की जा सके। मुझे आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि विद्याप्रेमी दानी सज्जन इस दिशा में ध्यान देकर अनुगृहीत करेंगे।

दानी सज्जन निम्न प्रकार से बैंक में सीधा धन NEFT द्वारा जमा करवा सकते हैं और इसकी सूचना कार्यालय को दें -

बैंक का नाम	:	केनरा बैंक, वी. वी. आर. आई., डाकघर साधु आश्रम, होशियारपुर।
खाता संख्या	:	S. B. 2719101000001
IFSC Code No.	:	CNRB 0002719

विशेष -: बैंक ड्राफ्ट या चैक द्वारा राशि वी. वी. आर. आई., होशियारपुर के नाम भेजें। संस्थान को भेजी जाने वाली धनराशि 80 जी इन्कमटैक्स 1961 के अधीन करमुक्त है।

निवेदक :

इन्द्रदत्त उनियाल

आदरी संचालक

वी. वी. आर. आई., डाकघर साधु आश्रम, होशियारपुर।

www.thearyasamaj.org

(संस्थान) सत्संग मन्दिर

वी. वी. आर. आई. सोसाईटी, होश्यारपुर (पंजाब) की ओर से प्रकाशक व मुद्रक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल द्वारा वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट प्रैस, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर से छपवा कर, वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर-१४६ ०२१ (पंजाब) से २८-१२-२०१३ को प्रकाशित।